पुरातत्त्व।

[पं० हीरानन्द शास्त्री एम० ए० का व्याख्यान।]

भारतवर्ष अपनी प्राचीन सभ्यता और परम्परागत विद्या के कारण अनुसन्धान के लिये एक आदर्श देश है। यह एक ऐसा देश है जहाँ पुरातत्त्व और प्राचीन-लेखोद्धारिणी विद्या के उत्तेजित करना चाहिये, क्योंकि उससे बहुत कुछ फल निकल सकता है। बात यह है कि मुसलमानी विजय (सन् १००० ई० के लगभग) से पहले की कोई कोई क्रमबद्ध ऐतिहासिक पुस्तक न मिलने के कारण हमें इस देश के प्राचीन इतिहास की सामग्री के लिये इन्हीं का अधिकतर सहारा लेना पड़ता है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस देश के लोगों ने इतिहास लिखने की ओर ध्यान न दिया। मैं यह नहीं कहता कि प्राचीन हिन्दुओं में ऐतिहासिक प्रभा नहीं थी बल्कि मेरा अभिप्राय केवल यह है कि उन्होंने इतिहास लिखा नहीं, वे तो इस लोक की भौतिक मनुष्य स्थिति की ओर कुछ विशेष ध्यान न देकर परलोक की ओर लौ लगाए रहते थे। उनके निकट तो यह संसार मायामय था और परलोक ही सत्य था। मेरी समझ में वेदान्त का यही भ्रान्त अर्थ इस देश में ऐतिहासिक ग्रन्थों के अभाव का कारण हुआ, जिससे भारत के बड़े बड़े महान् पुरुषों के चरित्रों पर परदा पड़ा हुआ है। इस अंधकार के परदे को पुरातत्त्व-विभाग की पैनी कुदाल भी उसके फाड़ने में कुंठित हो जाती है। त्रेता और द्वापर के वीरों की बात छोड़ दीजिये यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि, कालिदास और शंकर ऐसे ऐसे विद्वानों और कवियों तथा अशोक, कनिष्क, समुद्रगुप्त, हर्षवर्द्धन ऐसे ऐसे बड़े बड़े सम्राटों के केवल नाम ही नाम लोगों को मालूम हैं। यह ठीक है कि आजकल की छानबीन से उनके सम्बन्ध की बहुत सी बातें खुली हैं पर उनसे उनके विषय में पूरी जानकारी नहीं होती। जो बात मिस्टर स्मिथ ने समुद्रगुप्त वा भारतीय नेपोलियन के विषय में कही है वह यहाँ के और और महाराजाओं के विषय में भी ठीक घटती है। मिस्टर स्मिथ कहते हैं—"यह भाग्य का फेर है कि इस महाविजयी सम्राट् का, जिसने सारे भारतवर्ष को विजय करके अपना राज्य वंक्षु (Oxus) नद से लेकर सिंहल तक बढ़ाया, नाम तक भारत के इतिहासकारों को विदित नहीं। इन्हीं सत्तर वर्षों के बीच उसकी कीर्त्ति का थोड़ा बहुत उद्धार शिलालेखों और सिक्कों को परिश्रमपूर्वक पढ़ने से धीरे धीरे हुआ है जिससे उसके राजत्वकाल की घटनाओं का विस्तार-पूर्वक वर्णन लिखना अब सम्भव प्रतीत होता है। एक इसी बात से यह पता लग सकता है कि पुरातत्त्व-विभाग को धैर्य्यपूर्वक अनुसन्धान करने में कितनी बड़ी सफलता हुई है और उसने किस परिश्रम के साथ उन खंडों को जोड़ जोड़ कर एकत्रित किया है जिनके आधार पर ही भारत का सच्चा प्रामाणिक इतिहास लिखा जा सकता है।"

अहा! क्या अच्छा होता यदि हमें भारत के महान् पुरुषों के वृत्तान्त भी उसी प्रकार विदित होते जिस प्रकार यूरोप के लोगों के हैं। पर इसमें दोष किसका है? इसी देश के निवासियों का। यह काम भारतवासियों का है कि वे अपने देश के इतिहास लिखे जाने के लिये सामग्री ढूँढ़ें और अपने पूर्वजों के छोड़े हुए कीर्त्तिचिह्नों को रक्षित रक्खें। पर हममें से कितने हैं जो इस बात को समझते हैं? यदि सरकार अपने हाथ में यह कार्य्य न ले लेती तो बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री जिसके आधार पर आज पुरातत्त्वविद् कार्य्य कर रहे हैं सब दिन के लिये नष्ट हो गई होती। पर सरकार ने अपने ऊपर पूर्ववर्त्तियों के ऋण को स्वीकार किया और इस बात को समझा कि पूर्वकाल के कीर्त्तिचिह्नों को सुरक्षित रखना उसका पहला कर्त्तव्य है। इस महादेश के इतिहास के उद्धार के निमित्त सरकार जो प्राचीन चिह्नों की रक्षा कर रही है और पुरातत्त्वविभाग चला रही है उसके लिये प्रत्येक भारतवासी को कृतज्ञ होना

चाहिये। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस देश के शिक्षित लोग भी पुरातत्त्व की खोज के महत्त्व को नहीं समझते। बहुत से लोग तो इसे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। मुझे दौरे में बहुत से ऐसे लोग मिले हैं जो इस कार्य्य को व्यर्थ समय नष्ट करना समझते हैं। बहुतेरे लोग ऐसे भी मिले जिन्होंने कहा कि यह मुहक़मा तो केवल ख़ज़ाना ढूँढ़ने के लिए जारी किया गया है। इन पिछले लोगों का कहना एक प्रकार से ठीक भी है, क्योंकि पुरातत्त्व विभाग जिस ख़ज़ाने को खोद कर निकालता है वह अमूल्य है। वह विद्या का ख़ज़ाना है, जिससे भारत के इतिहास के अंधकारमग्न अंश प्रकाशित होते हैं। मैं आज इन्हीं रत्नों के ख़ज़ानों के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ जिनकी कान्ति से भारत का प्राचीन इतिहास बहुत कुछ झलक उठा है। मैं यहाँ पर बहुत संक्षेप में उन बातों का उल्लेख करना चाहता हूँ जिनका पता पुरातत्त्व-विभाग ने इन ५ या ६ वर्षों के बीच लगाया है। इनसे आप लोग समझ सकते हैं इस विभाग ने उन सामग्रियों का कितना बड़ा भाण्डार खोल दिया है जिनके आधार पर भारतीय इतिहास फिर से खड़ा किया जा सकता है।

सबसे पहले तो मैं पेशावर में मिले हुए कनिष्क के स्तूप के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ, जिसके भीतर बुद्ध की धातु (अस्थि आदि) पाई गई है। कोई समय था जब लोग बुद्ध के अस्तित्त्व में भी शंका करते थे और उन्हें एक कल्पित व्यक्ति समझते थे। चौदह वर्ष हुए कि पुरातत्त्व विभाग ने नैपाल की तराई में उनके जन्मस्थान का पता लगाया, जहाँ अब तक महाराज अशोक का स्तम्भ खड़ा है। उस स्तम्भ पर जो लेख मिला उससे उस लुम्मिनी वन का स्थान निश्चय रूप से स्थिर हो गया जहाँ सिद्धार्थ का जन्म हुआ था। क्योंकि शिलालेख में स्पष्ट लिखा हुआ है—

हिदा बुध जाते साक्यमुनि ति। हिदा भगवन जाते ति लुम्मिनी गामे।

इस लुम्मिनी गाम को आज कल रुम्मिनदेई कहते हैं। इस लेख के प्रमाण ने बुद्ध के अस्तित्व के सम्बन्ध में जितनी शंकाएँ थीं सबको दूर कर दिया। इससे यह अच्छी तरह प्रमाणित हो गया कि बुद्ध-नामधारी वास्तव में एक महापुरुष हुए थे। ईसा से ४८३ वर्ष पहले एक स्थान पर उनकी मृत्यु और अग्निक्रिया हुई, जिसे प्राचीनकाल में कुशीनगर वा कुशीनार कहते थे। उनकी धातु के आठ भाग किए गए जो भिन्न भिन्न देश के लोगों को उनके इच्छानुसार बाँटे गए। वे इन धातुओं को अपने अपने देशों में ले गए और उन्हें स्थापित करके उन्होंने उन पर अपने वित्तानुसार स्तूप उठवाए। स्तूप औंधे घंटे के आकार के बड़े बड़े ढूह होते हैं जिनके शिखर पर छत्र होता है। पहले तो ये स्तूप बुद्ध वा बोधिसत्त्वों की धातु स्थापित करने के लिये उठाए गए। फिर ये बुद्ध के जीवन के किसी घटना-स्थल पर स्मारक रूप में उठाए जाने लगे। इसके उपरान्त तो ये केवल पुण्य के लिये स्थापित होने लगे और लोग छोटे छोटे स्तूप बनवाकर बुद्ध वा बोधिसत्त्वों के नाम पर उत्सर्ग करने लगे।

शक-वंशीय महाराज कनिष्क के आदेश से बुद्ध की कुछ धातु पेशावर (प्राचीन पुरुषपुर) गई और एक स्तूप के भीतर स्थापित की गई। बौद्ध-कला के विषय में सबसे अधिक जानकारी रखनेवाले फ़ाउचर साहब ने इस स्तूप का स्थान आदि पहले ही बतला दिया था जिसे डाक्टर स्पूनर ने चार वर्ष हुए खोद कर निकाला। इसकी लंबाई एक छोर से दूसरे छोर तक २८५ फ़ुट है। इतना बड़ा स्तूप अब तक नहीं मिला था। बहुत सा ब्योरा न देकर मैं थोड़े में इसका कुछ वर्णन करता हूँ। २० फ़ुट के नीचे इस स्तूप के एक प्रकोष्ठ में एक धातु का डिब्बा मिला जिसके साथ ही बिल्लौर की डिबिया में बुद्ध की धातु रक्खी मिली। ढकन खिले कमल के आकार का था जिसके ऊपर तीन मूर्त्तियाँ स्थापित थीं। बीच में बुद्ध की आसीन मूर्त्ति थी और दोनों ओर दो बोधिसत्त्वों की मूर्त्तियाँ थीं। डिब्बे का

और सब वर्णन छोड़ मैं उस पर स्थापित एक मूर्त्ति का उल्लेख करना चाहता हूँ। यह मूर्त्ति स्वयं महाराज कनिष्क की है। महाराज सीधे होकर खड़े हैं और उनके दोनों ओर दो देवता फूल की माला लिये खड़े हैं। इसके अतिरिक्त महाराज की दाहिनी ओर सूर्य्य और बाईं ओर चन्द्रमा हैं। सूर्य्य महाराज कनिष्क का अभिषेक कर रहे हैं। कनिष्क की इस मूर्त्ति का उसकी और मूर्त्तियों से मिलान करने से जो सिक्कों पर मिली हैं तथा उस मूर्त्ति के साथ मिलाने से जो अभी हाल में मथुरा से निकली है, यह निश्चय हो जाता है कि यह कनिष्क ही की मूर्त्ति है। डिब्बे पर जो लेख है उससे भी यह बात अच्छी तरह प्रमाणित हो जाती है। यह लेख खरोष्टी लिपि में है जो इस देश की अत्यन्त प्राचीन लिपियों में से है और जो शारदा, ब्राह्मी, नागरी आदि के विरुद्ध दाहिनी ओर से बाईं ओर को (फ़ारसी की तरह) लिखी जाती थी। ये लेख संख्या में चार हैं और कमलदलों के किनारे किनारे लिखे हुए हैं। इनमें से एक तो पढ़ा नहीं जाता, केवल कनिष्क का नाम भर स्पष्ट पढ़ा जाता है। शेष का सारांश यह है कि यह दान सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के स्वीकारार्थ तथा सब प्राणियों के कल्याण के लिये किया गया। चौथे लेख से पता लगता है कि कनिष्क के विहार और महासेन के संघाराम का शिल्पकार वा निरीक्षक कोई अजिसाल नामी था। यह अजिसाल शब्द तथा उसके लिए जो विशेषण आया है ध्यान देने योग्य है। अजिसाल अजिसेलस या ऐसे ही और किसी यूनानी शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है। लेख में दास अजिसाल लिखा है। इससे जान पड़ता है कि वह शिल्पकार कनिष्क का मोल लिया हुआ .गुलाम था। इन सब बातों से कनिष्क का संबन्ध स्पष्ट ज्ञात होता है। अंतिम पंक्ति में कनिष्क शब्द के अक्षर इस प्रकार लिखे गए हैं कि आधे तो कनिष्क की मूर्त्ति की एक ओर पड़ते हैं और आधे दूसरी ओर। धातु के डब्बे के भीतर जो डिबिया थी वह स्फटिक की थी और उसमें चार अस्थिखंड रक्खे हुए थे। ह्वेन्सांग नामक चीनी यात्री, जो सातवीं शताब्दी में यहाँ आया था, इन अस्थियों के विषय में कह गया है कि ये गौतम बुद्ध ही की हैं। ये हड्डियाँ किस स्थान से पेशावर गई होंगी, यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि कनिष्क ऐसे प्रतापी राजा के लिये, जो बुद्ध के थोड़े ही दिनों के बाद हुआ, बुद्ध की असली धातु का पाना कुछ कठिन बात नहीं थी। यह उसके लिए स्वाभाविक था कि वह अपनी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) की शोभा और पवित्रता के लिये उन्हें वहाँ स्थापित करता। कनिष्क का समय अभी बिलकुल ठीक ठीक निश्चित नहीं हुआ है, पर इतना कहा जा सकता है कि वह ईसा की पहली शताब्दी में हुआ था। ये हड्डियाँ वास्तव में बुद्ध की हैं या नहीं, यह ठीक नहीं कहा जा सकता। पर इतना अवश्य पता लगता है कि पहली शताब्दी में वे हड्डियाँ बुद्ध ही की समझी जाती थीं।

पेशावर के इस आविष्कार से कनिष्क के समय के कलाकौशल की अवस्था का भी बहुत कुछ पता लगता है। डिब्बे के देखने से कला की उन्नति का नहीं, अवनति का प्रमाण मिलता है। बहुत से लोगों ने लिखा है गान्धार-शिल्प की जो उन्नति हुई वह कनिष्क के कारण हुई। डिब्बे पर जो मूर्त्तियाँ हैं उनसे इस मत का समर्थन नहीं होता; क्योंकि उनकी रचना उतनी सुन्दर नहीं है जितनी अधिकांश गांधार-मूर्त्तियों की है जो (तख़्तेभाई के पास) सहरी बहलोल तथा और कई स्थानों में मिली हैं। आज तक गांधार में जितनी मूर्त्तियाँ मिली हैं उनमें कुबेर और यक्षिणी हारीति की, जिन्हें बुद्ध ने अपने धर्म में दीक्षित किया था सबसे सुन्दर हैं। एक बुद्ध की पद्मासन मूर्त्ति भी बड़ी सुन्दर है।

अब मैं एक और महत्त्व के आविष्कार का कुछ वर्णन करता हूँ, जो १९०८-१९०९ में पुरातत्त्व-विभाग द्वारा किया गया। इससे इतिहास का बड़ा उपकार हुआ। यह पहला लेख है, जिसमें पंजाब के अर्द्ध-यवन (यूनानी) राजाओं का स्पष्ट उल्लेख मिला है।

यह लेख किस प्रकार प्राप्त हुआ इसका पूरा पूरा ब्योरा रायल एशियाटिक सोसाइटी के जनरल (१९०९) में निकला है। वहाँ पर मिस्टर मारशल ने उस स्तम्भ का वर्णन भी दिया है जिस पर उन्हें लेख मिला है। यह स्तम्भ ग्वालियर राज्य में भिलसा (प्राचीन विदिशा) के पास बेसनगर के एक पुराने ढूह के पास है। इस पर जो लेख है दो भागों में विभक्त है, सात पंक्तियाँ तो एक ओर हैं और दो पंक्तियाँ दूसरी ओर। लेख से जाना जाता है कि यह गरुड़ध्वज है जिसे महाराज अंतलिकिदस के राजत्वकाल में तक्षशिला-निवासी डियन के पुत्र परमभागवत हेलियोडोरस ने वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान् के प्रीत्यर्थ स्थापित किया था। अंतलिकिदस पंजाब का एक यवन (यूनानी) राजा था जो ईसा से १४० वर्ष पहले हुआ था। शिलालेख में एक भागभद्र नामक हिन्दू राजा का भी नाम आया है जिसकी राजधानी कदाचित् उज्जयिनी थी। यदि यह शिलालेख न मिलता तो इस राजा का नाम तक लोगों को न मालूम होता। शिलालेख का अनुवाद डाक्टर फ़्लीट ने इस प्रकार किया है—

"त्राता काशिपुत्र भागभद्र के निमित्त उसके राज्य के चौदहवें वर्ष में संकाश्य के राजा चंडदास ने देवाधिदेव वासुदेव का यह गरुड़ध्वज महाराज अंतलिकिदस के यवन-राजदूत दिय (डियन) के पुत्र परम भागवत हेलिओडोरस द्वारा निर्माण कराया।"

लेख के 'त्रातृ' शब्द से यह पता लगता है कि उस समय मध्यभारत में कोई प्रबल हिन्दू राज्य था जिसके अधीन आसपास के बहुत से राजा थे। धर्म की दृष्टि से भी यह लेख बड़े महत्त्व का है, क्योंकि यह वासुदेव सम्प्रदाय का है; जिसका मुख्य सिद्धान्त वासुदेव कृष्ण की भक्ति है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो गया कि वैष्णव धर्म बहुत प्राचीन धर्म है, हाल का गढ़ा हुआ नहीं है; जैसा कि कुछ लोग समझते हैं।

तीसरे आविष्कार से भी इतिहास के एक बहुत अंधकार में पड़े हुए समय की अर्थात् कुशनवंशियों के राजत्वकाल की बात का पता लगा है। प्रायः तीन वर्ष हुए कि मथुरा के सामने ईसापुर गाँव में एक शिलालेख मिला, जिससे भारत के शक-काल के इतिहास में नई बात मालूम हुई। इस लेख से प्रमाणित होता है कि कुशन-वंश में महा प्रतापी कनिष्क के बाद ही हुविष्क नहीं हुआ बल्कि इन दोनों राजाओं के बीच एक वसिष्क नाम का राजा भी हुआ है। यह शिलालेख एक लाल स्तम्भ पर है जो यज्ञ का यूप था। यह बहुत सुन्दर बना हुआ है। यह दोनों छोरों पर कुछ टूट गया है और बाक़ी ज्यों का त्यों है। सबसे ध्यान देने की बात इसके विषय में यह है कि यह हिन्दू-चिह्न है और इस पर का लेख समस्त संस्कृत में है। समस्त संस्कृत में लिखे हुए जितने लेख पाए गए हैं उनमें यह सबसे प्राचीन है। इसमें २४ संवत् दिया हुआ है जो डाक्टर फ़्लीट के अनुसार ईसा से ३३–३४ वर्ष पहले पड़ता है। लेख का सारांश यह है। महाराजाधिराज साहि वसिष्क के राजत्वकाल में भरद्वाजगोत्री ब्राह्मण रुद्रिल के पुत्र द्रोणल ने द्वादशाह यज्ञ किया और यूप खड़ा किया। लेख में जो संवत् दिया हुआ है वह कौन संवत् है, यह निश्चित नहीं होता। सम्भव है कि वह राजा कनिष्क का चलाया हुआ संवत हो। पर डाक्टर फ़्लीट उसे विक्रम-संवत् मानते हैं।

इस लेख से यह विषय अच्छी तरह से निर्धारित हो जाता है कि ईसा की पहली शताब्दी के लगभग वसिष्क नामक एक राजा हुआ जिसका आधिपत्य मथुरा में था और कदाचित् साँची में भी; जहाँ उसके नाम का एक और शिलालेख पाया गया है। हम लोग अच्छी तरह जानते हैं कि कुशन-वंश का प्रताप कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों के समय में ख़ूब बढ़ा चढ़ा था। कनिष्क का राज्य काबुलिस्तान से लेकर मथुरा क्या उसके और आगे तक था। ह्वेन्सांग के अनुसार तो मध्य-भारत का भी बहुत सा भाग उसके राज्य में था।

दूसरा बड़ा काम पुरातत्त्व-विभाग ने यह किया कि उसने प्राचीन श्रावस्ती का पता लगाया।

श्रावस्ती के खंडहर आजकल सहेत महेत के नाम से प्रसिद्ध हैं और गोंडा ज़िले में बलरामपुर के पास हैं। इस स्थान के श्रावस्ती होने का निश्चित प्रमाण लेखों में पाया गया है। एक लेख तो कुशन-समय की एक बुद्ध मूर्त्ति पर है जिसमें उस छत्र-दंड-युक्त मूर्त्ति का श्रावस्ती में कौशाम्बकुटी के भीतर उस स्थान पर स्थापित किया जाना लिखा है जहाँ भगवान् बुद्ध टहला करते थे (भगवतो चंकमे)। दूसरा लेख ताम्रपत्र पर है और कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र के समय का है, इसमें विक्रम संवत् ११८६ (सन् ११३०) दिया हुआ है। ये दोनों लेख हमारे प्रान्तीय अजायबघर में सुरक्षित हैं। सब संस्कृत पढ़नेवाले लोग श्रावस्ती के नाम से परिचित होंगे। इसी स्थान पर वह प्रसिद्ध जेतवन आराम था जहाँ बुद्ध रहते थे। श्रावस्ती और जेतवन आराम का ठीक ठीक पता लग जाना पुरातत्त्वविदों ही के मतलब की बात नहीं है, बल्कि करोड़ों बौद्धों के लिए, जो भगवान् बुद्ध के आवास को संसार में अत्यन्त पवित्र स्थान मानते हैं, बड़े महत्त्व की बात है।

इसी प्रकार कुशीनार के विषय में भी समझना चाहिए, जहाँ बुद्ध का निर्वाण हुआ था। इस स्थान के विषय में बहुत झगड़ा था जो अब मेरी पाई हुई वस्तुओं से तै हो गया है। जनरल कनिंहम और उनके सहायक मिस्टर कालहिल बहुत पहले गोरखपुर ज़िले के कसया नामक स्थान को कुशीनार बतला गए थे। पर उनकी बात संदिग्ध समझी गई और कसया पर पुरातत्त्व-विभाग की कई चढ़ाइयाँ हुईं। कुछ मोहरें पाई गईं जिन पर 'महापरिनिर्वाण' वाक्य लिखा हुआ था, ये मोहरें यथेष्ट प्रमाण थीं। पर जब मैंने निर्वाणचैत्य के भीतर से एक लेख निकाला तब यह बात अन्तिम रूप से निश्चित हो गई कि कसया ही कुशीनार है। मैंने चैत्य के ऊपर का भाग साफ़ किया और उसके बीचोबीच एक सुरंग खोदी, जिसके सहारे से बहुत से बहुमूल्य प्राचीन लेख मिले जो म्यूज़ियम में रक्खे हैं। इनमें सबसे महत्त्व का एक ताम्रपत्र है। उस पर जो लेख है उसकी अंतिम पंक्ति में "निर्वाण-चैत्य ताम्रपत्र" स्पष्ट लिखा हुआ है। यह लेख पूर्ण-रूप से प्रमाणित करता है कि बुद्ध का निर्वाण कसया में हुआ था।

पाँचवीं वस्तु जो काम की पाई गई वह सारनाथ का अशोक-स्तम्भ है। यह समूचा एक पत्थर का है और इस पर बहुत बढ़िया पालिश (रोग़न) किया हुआ है। यह उस स्थान पर स्थापित किया गया था जहाँ बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करके पहले पहल धर्म-चक्र का प्रचार किया था। यह अब सारनाथ के म्यूज़ियम में रक्खा हुआ है। इसके सिरे पर बड़ी सुन्दर कारीगरी है। जान पड़ता है कि यह स्तम्भ उस समय स्थापित किया गया था जब ईसा से २४९ वर्ष पूर्व महाराज अशोक बौद्ध-तीर्थ-स्थानों की यात्रा के लिए निकले थे। बड़े दुःख की बात है कि कारीगरी का ऐसा सुन्दर चिह्न गिरा कर खंडित कर दिया गया। उसका एक अंश ही अब अपने आधार पर स्थित बच गया है।

दूसरा बड़ा काम जो इस विभाग ने किया वह प्राचीन वैशाली के स्थान का पता लगाना है। यह स्थान मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के अन्तर्गत बसाढ़ में है और इसे आज-कल राजा विशाल का गढ़ कहते हैं। यद्यपि इसकी खुदाई से कोई विशेष महत्व के चिह्न नहीं मिले हैं पर मिट्टी की मुद्राएँ आदि जो कुछ छोटी मोटी चीज़ें पाई गई हैं वे बड़े काम की हैं। उनसे उस प्राचीन समय की राजनैतिक, धार्मिक तथा कलाकौशल-सम्बन्धी अवस्था का बहुत कुछ पता चलता है। इन बड़ी बड़ी राजमुद्राओं (मुहरों) से उस समय की प्रचलित राज-पद्धति का बहुत कुछ आभास मिलता है। इनमें से एक का, जो ईसा से लगभग तीन सौ वर्ष पहले की है, यहाँ पर मैं विशेष उल्लेख करना चाहता हूँ। जितनी मुद्राएँ आज तक मिली हैं उनमें यह सबसे पुरानी है। यह चौखूँटी है और बिल्कुल अखंडित है। इस पर तीन प्राचीन संकेत बने हैं और मौर्य्यकाल की लिपि में तीन पंक्तियों का एक लेख भी है। इस मुद्रा के विषय में दो भिन्न मत हैं। डाक्टर स्पूनर का अनुमान है कि यह

वैशाली नगर की पुलिस की प्रधान मुद्रा है जो टकार नामक ग्राम की चौकी पर रक्खी गई थी। पर डाक्टर वीनिस का मत है कि यह लेख उस जाँच से सम्बन्ध रखता है जिसके लिए हर तीसरे वर्ष अशोक की आज्ञा से दौरा होता था। यह दूसरा अनुमान अधिक सम्भव और ठीक जान पड़ता है। यहाँ पर यह बात कह देना आवश्यक है कि ऐसे चिह्न केवल सिद्धान्त स्थिर करने में सहायकमात्र हो सकते हैं। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाए जा सकते हैं। इससे केवल उन पर किसी सिद्धान्त का स्थिर करना ठीक नहीं होता। उदाहरण के लिए इन्हीं मुद्राओं के साथ एक जंतर (तावीज़) मिला है जिस पर 'Made in Austria' (आस्ट्रिया का बना) लिखा हुआ है। अब क्या इससे हम यह सिद्धान्त निकालें कि वैशाली में कभी आस्ट्रिया का राज्य था?

दूसरी मुद्रा से, जिस पर लक्ष्मी की एक खड़ी मूर्त्ति बनी है, यह प्रमाणित होता है कि तक्षशिला के समान वैशाली में भी पाटलिपुत्र के राजवंश का एक प्रतिनिधि शासक रहता था। लेख जो मुद्रा पर है वह बहुत स्पष्ट नहीं है पर उसका यह अर्थ लगाया गया है—"वैशाली नामक कुंड के प्रतिनिधि राजकुमार के मंत्री की मुद्रा"। तीसरी मुद्रा यद्यपि छोटी है पर बड़ी कुतूहल-पूर्ण है। इसकी बनावट तथा लेख की अंकनशैली देखने से आज कल की भारतीय सरकार की मुहर का ध्यान होता है।

अब मैं तक्षशिला की खुदाई का कुछ वर्णन करूँगा जो जारी है और जिससे पुरातत्वज्ञ लोग बड़े बड़े ऐतिहासिक रहस्यों के खुलने की आशा कर रहे हैं। डाक्टर मार्शल की अध्यक्षता में जो काम गत वर्ष हुआ उससे इतिहास के बहुत से विवाद-ग्रस्त विषयों पर प्रकाश पड़ा है। मैं यहाँ बहुत संक्षेप में उस काम का उल्लेख करूँगा जो वहाँ हुआ।

तक्षशिला रावलपिंडी से दस कोस उत्तर-पश्चिम एक हरे भरे मैदान में है, जहाँ से कश्मीर की हिमावृत पर्वत श्रेणियाँ दिखाई पड़ती हैं। इस प्राचीन नगरी की स्थिति एक ऐसे सुरक्षित स्थान पर थी जहाँ से होकर फ़ारस, तुर्किस्तान आदि से व्यापार करनेवाले व्यापारी आते जाते थे। इस नगरी के खँड़हरों को देखने से जान पड़ता है कि दिल्ली की तरह भिन्न भिन्न राजाओं के अधिकार में पड़कर इसकी बस्ती भी समय समय पर बदलती रही। तक्षशिला की स्थापना अत्यंत प्राचीन काल में हुई थी। ऐसा प्रसिद्ध है कि रामचन्द्र के भाई भरत के पुत्र तक्ष ने यह नगरी बसाई थी। पर ऐसे प्राचीन काल के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। एक बात तो निश्चित है कि तक्षशिला उस समय एक प्रधान विद्यापीठ और कलाकौशल का केन्द्र थी। सिकन्दर जब भारत में आया (३२६ वर्ष ईसा से पूर्व) तब पहले पहल तक्षशिला ही के राजा ने अधीन होकर उससे मित्रता की। पर इसके चार वर्ष उपरान्त जब मौर्य्य चन्द्रगुप्त सम्राट् हुआ तब उसने पंजाब से यूनानी सेना को निकाल दिया। अशोक के समय तक तक्षशिला पर मौर्य्यों ही का अधिकार रहा। इसके पीछे उस पर बलख़ के अर्द्ध-यवन (यूनानी) राजाओं का अधिकार हुआ और फिर पारदों (Parthians) का। पारदों के पीछे फिर उस पर कुशन राजाओं का अधिकार हुआ, जिनमें कनिष्क महा प्रतापी हुआ। खँड़हरों में बीर टीला ही मौर्य्यकाल की बस्ती का चिह्न बतलाता है। 'सिरकप' और 'चिर' नामक ढूह और और काल की बस्तियों के चिह्न हैं जिनमें पारदों के समय का ईंटों का काम विशेष ध्यान देने योग्य है। चार सौ वर्षों के बीच इस नगरी पर मगध, यूनान पश्चिमी चीन ऐसे भिन्न भिन्न देशों की सभ्यता का प्रभाव पड़ा। कुशन वंश की शक्ति के ह्रास और गुप्त वंश के प्रबल प्रताप के उदय के साथ ही इस नगरी की श्री भी लुप्त होने लगी। ईसा की सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री हुएन्सांग भारत में आया था तब तक्षशिला कश्मीर राज्य के अधीन थी और उसके सब स्थान उजड़ गए थे।

तक्षशिला के खँड़हर बारह वर्ग मील के विस्तार में हैं। चार स्थानों पर जो जाँच के लिए खुदाई हुई उनसे यह पता चला कि कुशन वंश की इमारतें पारदों के खँड़हरों के ऊपर बनी थीं। कदफ़िसस, कोज़ौल ग्रैार वेमा के सिक्के नीचे की तह में मिले हैं। कनिष्क ग्रैार हुविष्क के सिक्के उनके ऊपर पाए गए हैं। वासुदेव के सिक्के चतुर्थकाल की इमारतों से सम्बन्ध रखते हैं। डा० मार्शल का कहना है कि ये कोठरियाँ ईसा की पहली शताब्दी के मध्य में बनी थीं ग्रैार उनकी मरम्मत ग्रैार वृद्धि दूसरी शताब्दी में हुई थी। चतुर्थकाल के भवन तीसरी शताब्दी के आरम्भ में उठे थे। इसी अनुमान के अनुसार उन्होंने कदफ़िसस के सिक्कों का काल पहली शताब्दी का अन्तिम भाग वा दूसरी शताब्दी का आरंभ निश्चित किया है ग्रैार कनिष्क ग्रैार हुविष्क के सिक्के दूसरी शताब्दी के मध्य ग्रैार वासुदेव के सिक्के दूसरी शताब्दी के अन्त ग्रैार तीसरी शताब्दी के प्रारंभ के बतलाए हैं। डा० मार्शल कहते हैं कि ये सिक्के यहाँ गाड़े जाने के पहले प्रचलित रहे होंगे। जो कुछ हो इस खोज से इतना पता तो अवश्य लगता है कि कनिष्क ने दूसरी शताब्दी में राज्य किया था, पहली में नहीं, अतः उसका ईसा से ५७ वर्ष पहले राजसिंहासन पर बैठना सिद्ध नहीं होता।

कनिष्क के काल के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। अतः जब तक कोई प्रामाणिक लेख नहीं मिलता तब तक एकमत नहीं हो सकता। यदि इस विषय में अधिक जानना हो तो डा० मार्शल का व्याख्यान देखिए, जो उन्होंने ४ सितंबर १९१३ को पंजाब हिस्टारिकल सोसाइटी के सामने दिया था।

तक्षशिला की इस खोज से भारत की भवन-निर्माणकला का बहुत कुछ सूत्र मिलता है ग्रैार भारतीय शिल्प के विकाश के सम्बन्ध में बहुत सी बातें निश्चित हुई हैं। पारदों की शिल्पकला में यूनानी भावों की प्रधानता पाई जाती है। उसके द्वारा भारत में यूनानी भावों का बहुत कुछ प्रचार हुआ होगा।

ऊपर जो बातें लिखी गईं उनसे पुरातत्त्व-विभाग की उपयोगिता प्रकट होती है। प्राचीन-लेखोद्धार जो इसका एक प्रधान ग्रंग है भारत की अनेक अतीत ग्रैार विस्मृत घटनाग्रों को निश्चित रूप से जानने का प्रधान द्वार है। यही नहीं, यह अर्वाचीन इतिहास के लिए भी बड़ा उपयोगी है। यहाँ पर मैं मछलीशहर (ज़ि० जौनपुर) में मिले हरिश्चन्द्र के उस ताम्रपत्र का उल्लेख भी कर देना चाहता हूँ जिसे मैंने Epigraphia Indica. में प्रकाशित किया है। कन्नौज के राजवंश में हरिश्चन्द्र का नाम नया मिला है। पुरातत्त्व-विभाग ने हिन्दू बौद्ध ग्रैार जैनकला के श्लोक-चिह्न खोद निकाले हैं। इनमें से बहुत से तो म्यूज़ियमों में रक्खे हुए हैं।

यहाँ मथुरा की तक्षणकला (संगतराशी, पत्थर की कारीगरी) के विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। जैसे कि भारत की ग्रैार ग्रैार विद्याग्रों ग्रैार कलाग्रों के सम्बन्ध में वैसे ही तक्षणकला के सम्बन्ध में भी पहले लोगों की धारणा थी कि उसका विकाश यूनानी संसर्ग के प्रभाव से हुआ। कुछ लोगों ने यहाँ तक अनुमान भी लड़ा डाला कि बलख़ के कुछ यवन (यूनानी) शिल्पकारों को मथुरा के धनाढ्य बौद्ध अपने यहाँ ठीक उसी प्रकार नौकर रखते थे जिस प्रकार पिछले खेवे मुग़ल बादशाह यूरोपियन कारीगरों को नौकर रखते थे। पर अब मथुरा की शिल्पकला का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह बात प्रमाणित हो गई कि उसका विकाश भारतीय कारीगरों ही ने किया था। इन कारीगरों को वायव्य से कुछ उत्साह अवश्य मिला, पर इन्होंने गांधार की कारीगरी को बिल्कुल भारतीय साँचे में ढाला। मथुरा के शिल्प में भारतीय-भाव सबसे अधिक पत्थर के चित्रित बेंड़ों (railings) में लक्षित होता है जो स्तूपों के किनारे

लगे हुए थे। ये बेंड़े उत्तर-पश्चिम में नहीं मिलते। मथुरा के ये बेंड़े भारत के पुराने ढाँचों पर बने हैं यह उनकी बनावट और नक्काशी से साफ़ झलकता है। इन बेंडों पर स्त्री पुरुषों के बड़े सुन्दर चित्र बने हुए हैं। इस प्रकार के कई खंभे लखनऊ के म्यूज़ियम में रक्खे हैं।

एक बात मुझे और कहनी है। कई जगह ताँबे के अस्त्र और औज़ार मिले हैं जिनमें से कई एक लखनऊ के म्यूज़ियम में हैं। इनके विषय में साधारण लोगों की धारणा है कि ये रामायण और महाभारत के समय के हैं। बिठूर (ज़ि० कानपूर) और परियार (ज़ि० उन्नाव) में जो मिले हैं उनके विषय में जनश्रुति है कि वे लवकुश की लड़ाई के समय के हैं। वे जो कुछ हों, पर वे ऐसे अतीत काल के विलक्षण चिह्न हैं जहाँ तक इतिहास की पहुँच नहीं। इसी प्रकार बहुत से पत्थर के हथियार मिले हैं जो प्रस्तर-युग के अर्थात् ईसा से दो तीन हज़ार वर्ष पहले के हैं। ये सब चिह्न ऐतिहासिक काल के पूर्व के हैं और उन जिज्ञासुओं के बड़े काम के हैं जो सतयुगी बातों को जानना चाहते हैं। अब तक हम लोगों को कोई ऐसे चिह्न नहीं मिले हैं जिनसे वैदिक तथा रामायण वा महाभारत के काल की सभ्यता का कुछ पता चलता हो, पर यह निश्चय है कि यदि उस काल के कोई चिह्न मिलेंगे तो इसी हमारे आर्य्यावर्त्त में मिलेंगे। आशा की जाती है कि इस पुरातत्त्व-विभाग को अभी और न जाने कितने ऐसे चिह्न मिलेंगे जिनके सहारे इतिहासकार भारत का एक शृंखलाबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने में समर्थ होंगे।

—:o:—

जम्बू-राजवंश।

(२)

मुल्तान और काश्मीर के युद्धों में गुलाबसिंह अफ़ग़ानों से बहुत वीरतापूर्वक लड़े थे। इसके पुरस्कार-स्वरूप सन् १८२२ में महाराज रणजीतसिंह ने अमरगढ़ से एक परवाना जारी करके, उन्हें जम्बू और रामनगर का राज्य प्रदान किया था। उस परवाने पर स्वयं महाराज रणजीतसिंह के दाहिने पंजे की केसरिया छाप थी। गुलाबसिंह को राजगद्दी देते समय भी, महाराज ने उनके मस्तक पर इसी प्रकार पंजे की छाप लगाई थी, पर यह छाप किसी प्रकार उलटी लग गई थी। एक दरबारी के इस उलटी छाप का कारण पूछने पर महाराज ने कहा भी था कि उन्होंने गुलाब सिंह का वृक्ष, चिरकाल तक बने रहने के लिए, भूमि में लगा दिया है। उक्त परवाने पर चौथी, असाढ़ सं० १८७९ वि० (सन् १८२२) की तिथि दी हुई है। राज्य पाने के कुछ दिनों बाद गुलाबसिंह जम्बू चले और महाराज लाहौर लौट आये। गुलाबसिंह के जम्बू पहुँचने पर प्रजा ने बहुत प्रसन्नता प्रगट की थी; राज्य की ओर से कई दावतें दी गईं थीं और प्रत्येक मकान का कर दो रुपये कम कर दिया गया था।

कुछ समय बाद सरदार अज़ीमख़ाँ बाग़ी हो गया और बहुत अधिक उपद्रव करने लग गया। इस पर महाराज रणजीतसिंह ने आठ हज़ार सिपाहियों को राजकुमार शेरसिंह की अधीनता में सरदार की ओर भेजा। उस समय गुलाबसिंह, सरदार हरीसिंह सिन्धानदालिया, और अटारीवाले सरदार भी उनके साथ थे। सेना ने अटक के निकट सिन्धुनद पार किया; वहाँ शत्रुओं से उसका कुछ मुक़ाबला भी हुआ। पर जब यह सेना आगे बढ़कर तेहरी नाम की नदी पार कर चुकी, तो वहाँ आस पास के स्थानों से अचानक ४०००० ग़ाज़ी निकल

आये। उनमें से १५००० आदमी तो सरदार अहमदख़ाँ की अधीनता में थे और शेष सय्यद अहमद के अनुयायी थे। सय्यद अहमद ने जहाद का झंडा खड़ा किया था और इसी लिए धर्म्म के नाम पर उसे बहुत से आदमी मिल गये थे। जब शत्रुओं की इतनी प्रबलता का समाचार महाराजा रणजीतसिंह को मिला तो वे स्वयं युद्धस्थल पर पहुँच गये। पर वह स्थान युद्ध के लिए उपयुक्त न देख कर महाराज ने तेहरी के क़िले पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लिया। सरदार अहमदख़ाँ ने क़िलेवालों की सहायता करने के अभिप्राय से अपनी सेना को नाव पर चढ़ा कर नदी पार करना चाहा था; पर उसी अवसर पर महाराज की सेना ने उसकी सारी नावें डुबा दीं। सरदार अहमदख़ाँ बड़ी कठिनता से इस दुर्घटना से अपनी जान बचा कर काबुल की ओर भाग गया।

रामनगर के निकट पिंड नामक पहाड़ी इलाक़े में एक क़िला था। उस क़िले और उसके आस पास के स्थान का नाम समरथ था। सन् १८२४ में दीवान अमीरचन्द की सम्मत्ति से गुलाबसिंह ने उस क़िले पर आक्रमण करने का विचार किया, १००० योद्धा साथ लेकर वह क़िला जा घेरा और उसके चारों ओर खाँई खोद डाली। उसी अवसर पर गुलाबसिंह ने क़िले वालों से यह भी कहला दिया कि यदि वे शीघ्र ही आत्मसमर्पण न कर देंगे तो बड़ी विपत्ति में पड़ जायँगे। क़िले वाले भी इतने भयभीत हो गये थे कि उन्होंने कुछ निश्चित धन देना और आत्मसमर्पण करना इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि उनका जीवन और उनकी सम्पत्ति नष्ट न हो। गुलाबसिंह ने भी यह शर्त स्वीकार करके क़िले पर अपना अधिकार कर लिया और मियाँ बिशम्भ को वहाँ का थानेदार नियुक्त करके वह जम्मू लौट आये। जब इस विजय का समाचार रणजीतसिंह को मिला तो उन्होंने दिलारामसिंह को उस क़िले पर अधिकार करने के लिए भेजा; पर पीछे से वह क़िला उन्होंने रामकोट और सानियाँ के अधिकारी सुचेतसिंह को दे दिया।

एक बार महाराज रणजीतसिंह के बहुत बीमार होने का समाचार सुनकर सरदार बुधसिंह सन्धानवालिया ने गोविन्दगढ़ के क़िले पर अधिकार करना चाहा। रात के समय बुधसिंह इसी अभिप्राय से क़िले के दरवाज़े पर पहुँचा और उसने क़िले वालों से फाटक खोलने के लिए कहा। पर क़िले वालों ने उत्तर दिया कि उन्हें सूर्य्यास्त से पहले क़िले का दरवाज़ा न खोलने की आज्ञा मिली हुई है; इसलिए विवश होकर बुधसिंह लौट गया। महाराज को समय समय पर बुधसिंह से अच्छी सहायता मिला करती थी, इसलिए उन्होंने उसका अपराध क्षमा कर दिया और उसे पेशावर जाकर अफ़ग़ानों से युद्ध करने की आज्ञा दी। अफ़ग़ानों का उपद्रव उस समय बहुत बढ़ गया था। पेशावर पहुँच कर बुधसिंह ने देखा कि बहुत बड़ी अफ़ग़ान सेना उसका सामना करने के लिए उपस्थित है। उस सेना में सय्यद अहमद, यार मुहम्मदख़ाँ, सुलतान मुहम्मदख़ाँ और मीर मुहम्मदख़ाँ आदि कई बड़े बड़े सरदार थे, इसलिए बुधसिंह वहीं रुक गया और उसने वहाँ का सब समाचार महाराज के पास लाहौर भेज दिया। महाराज ने उसी समय गुलाबसिंह और दीवान अमीर चंद के पास आज्ञा भेजी कि जहाँ तक शीघ्र हो सके, वे अपनी सारी सेना लेकर बुधसिंह की सहायता के लिए पेशावर जायँ। इसी बीच में अफ़ग़ान सेना हसन अब्दाल पर अपना अधिकार कर चुकी थी। महाराज की आज्ञा पाकर सुचेतसिंह और अटारी वाले सरदार भी बुधसिंह की सहायता को पहुँच गये थे और अफ़ग़ानों के साथ उनकी कई बार मुठभेड़ भी हो चुकी थी। जब सारी सिखसेना एकत्र हो गई तो उसने कई छोटे छोटे युद्धों में अफ़ग़ानों को परास्त किया और अन्त में उसने संवत् १८८२ के फागुन की १४वीं तिथि को (सन् १८२५) सैदू के युद्ध में पठानों को वहाँ से हटा कर ही छोड़ा। गुलाबसिंह अपने जीवन में अन्तिम बार इसी युद्ध में वीरता-पूर्वक लड़े थे।

पिंड दादनखाँ, मेरा, मियानी, कादिराबाद, डुंभी मंडी आदि झेलम के दाहिने किनारे के सभी स्थानों के अधिकारी बड़े अराजक हो गये थे और उन प्रान्तों में कुप्रबन्ध के कारण बड़ी अव्यवस्था फैली हुई थी। इसलिए सन् १८३० में महाराज रणजीतसिंह ने गुलाबसिंह को उन सब स्थानों का अधिकारी बना दिया। गुलाबसिंह ने अधिकार पाते ही अनेक डाकुओं और लुटेरों को क़ैद कर लिया और कुछ को मरवा डाला; इस कार्य्य से वहाँ की प्रजा बहुत सुखी और सन्तुष्ट हो गई। इसके सिवा गुलाबसिंह ने बहुत सी परती भूमि के जोतने बोने का भी प्रबन्ध कर दिया। सन् १८३३ में महाराज ने उन्हें झेलम और रोहतास के ज़िले दे दिये और सन् १८३६ में उन्हें गुजरात का अधिकार भी मिल गया।

उन दिनों पेशावर महाराज रणजीतसिंह के अधीन था, और सरदार हरीसिंह वहाँ के अधिकारी थे। सन् १८३४ में महाराज को समाचार मिला कि अफ़ग़ानिस्तान-नरेश दोस्त मुहम्मदख़ाँ पेशावर पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन करने का विचार कर रहा है। उसी समय महाराज ने पेशावर की ओर प्रस्थान किया। जब पेशावर में लोगों को महाराज के आने की ख़बर मिली तो सरदार हरीसिंह, गुलाबसिंह, सुचेतसिंह आदि मुख्य मुख्य सरदार महाराज के स्वागत के लिए क़िले से निकले। पर शत्रुओं ने बीच में ही किसी प्रकार नदी का जल रोक कर उसका रुख़ बदल दिया था। इसलिए महाराज की सेना को जल के लिए बड़ी कठिनता हुई। बहुत ढूँढ़ने पर अन्त में उन्हें वह स्थान मिल गया जहाँ शत्रुओं ने बाँध बाँधा था। उसी स्थान पर महाराज की छावनी पड़ी; दोस्त मुहम्मदख़ाँ भी निकट ही अपनी सेना सहित ठहरा हुआ था। महाराज ने अपने सरदारों को सेना सहित तुरन्त आकर लश्कर में सम्मिलित होने की आज्ञा दी। महाराज नित्य अपनी और अपने सरदारों की सेना का निरीक्षण किया करते थे और शत्रुओं को सुनाने के लिए रण-वाद्य बजवाया करते थे। जब अफ़ग़ानिस्तान के अमीर के भाई सुलतान मुहम्मदख़ाँ और पीर मुहम्मदख़ाँ को महाराज की इन तैयारियों का समाचार मिला तो उन्होंने गुलाबसिंह के पास एक दूत भेज कर महाराज से भेंट करने की इच्छा प्रकट की। सब बातों का निश्चय हो जाने पर सरदार सुलतान मुहम्मदख़ाँ आकर गुलाबसिंह से मिले। गुलाबसिंह ने उनका यथेष्ट आदर सत्कार करके उन्हें महाराज के समक्ष उपस्थित किया। ख़ाँ पर प्रभाव डालने के लिए वे उन्हें उस मार्ग से ले गये थे, जिसके दोनों ओर विशाल सिख सेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी हुई थी। पर इस भेंट का फल आशानुरूप न हुआ और महाराज ने कुछ निश्चित वार्षिक कर, घोड़े, तलवारें और फल आदि लेकर ही, अमीर को पेशावर और डेरा गाज़ीख़ाँ का प्रान्त दे देना निश्चय किया। इस निश्चय से सरदार हरीसिंह इतने अधिक असन्तुष्ट थे कि उन्होंने महाराज को उसी समय अमीर दोस्त मुहम्मदख़ाँ को बन्दी कर लेने की सम्मति दी; पर गुलाबसिंह ने बीच में ही रोक दिया, क्योंकि वह अमीर को सकुशल वहाँ से लौटा लाने का वचन दे चुके थे। जब अमीर दोस्त मुहम्मदख़ाँ ने अपने भाई से महाराज तथा सिख-सेना के सम्बन्ध की सब बातें विस्तृत रूप से सुनीं तो वह तुरन्त क़ाबुल लौट गया। इसके बाद महाराज ने सरदार सुलतान मुहम्मदख़ाँ को अपनी ओर मिलाना चाहा और इस कार्य्य का भार गुलाबसिंह पर सौंपा। सिखों और अफ़ग़ानों में फ़क़ीर अज़ीज़उद्दीन दूतत्व करते थे; गुलाबसिंह ने उन्हीं की सहायता से महाराज की इच्छा पूर्ण कर दी। तदुपरान्त कोहाट, दुआब, पेशावर आदि जागीर की भाँति सुलतान मुहम्मदख़ाँ पीरमुहम्मदख़ाँ और सैयद मुहम्मदख़ाँ को देकर, और वहाँ का पूरा प्रबन्ध करके महाराज लाहौर लौट गये।

सन् १८३७ में अफ़ग़ानिस्तान के अमीर के पुत्र वज़ीर मुहम्मद अकबर ने जमरूद के क़िले पर चढ़ाई की। जमरूद का नाम सिखों ने फ़तहगढ़ रक्खा था।

जब यह समाचार सरदार हरीसिंह को मिला तो वे तुरन्त पेशावर से चल पड़े। जब वह तक्खल नामक स्थान पर पहुँचे तो उनका सामना ५० अफ़ग़ानों से हुआ; शेष अफ़ग़ान उस समय अली मसजिद के निकट एक पहाड़ी के पीछे छिपे हुए थे। हरीसिंह ने अफ़ग़ानों पर आक्रमण किया और अफ़ग़ान अपने शेष साथियों से मिलने के लिये जान बूझकर पीछे हटने लगे। इस युद्ध में सरदार हरीसिंह बहुत वीरतापूर्वक लड़े थे और अन्त में वे बुरी तरह घायल होकर जमरुद के क़िले में चले गए और वहीं उनका देहान्त हो गया। लेकिन सेनापति महानसिंह बराबर क़िले की रक्षा करते रहे और सरदार हरीसिंह की मृत्यु का समाचार छिपाए रखने के लिये दोनों समय उनके लिये बराबर भोजन भेजते रहे। महानसिंह ने महाराज को सरदार की मृत्यु की सूचना देने के लिये एक दूत भी भेजा, पर दरबार में किसी को ऐसा दुःसंवाद सुनाने का साहस ही न होता था। अन्त में फ़क़ीर अजीज़-उद्दीन ने महाराज को यह समाचार सुनाया। महाराज को सरदार की मृत्यु का समाचार सुनकर बहुत अधिक दुःख हुआ और उन्होंने राजा ध्यानसिंह और सुचेतसिंह को तुरन्त जमरुद की ओर भेजा। मार्ग में रोहतास के निकट शहजादाराय भी अपनी सेना सहित उनमें आ मिले और सब लोग प्रति दिन ६० कोस का धावा मारते हुए पेशावर की ओर बढ़े। वहाँ जमादार खुशहालसिंह नई सहायक सेना की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। राजा ध्यानसिंह के साथ फ़्रांसीसी योद्धा एलार्ड भी था। सिख-सेना की प्रबलता देखकर अफ़ग़ानों को उसका सामना करने का साहस न हुआ और वे लौटकर खैबर घाटी की ओर चले गए। गुलाबसिंह को भी, जो कि उस समय चिनियोट में थे, महाराज की ओर से सेना सहित पेशावर जाने की आज्ञा मिल चुकी थी। मार्ग में खैराबाद के निकट डाकुओं ने उनके कुछ ऊँट ले लिए थे जो कि गुलाबसिंह ने उनका पीछा करके फिर उनसे छीन लिए। जब उनकी सेना लन्दा नदी पार करके यूसफजइयों के मध्य में पहुँची तो उनमें से कुछ ने तो गुलाबसिंह की अधीनता स्वीकार कर ली, पर कुछ लोगों ने उनका विरोध किया। गुलाबसिंह ने युद्ध करके उन सबको भी परास्त और अधीन किया। इसके बाद पुंछ के परगने में भी थोड़ा बहुत उत्पात हुआ और वहाँ के शम्स नामक एक व्यक्ति ने विद्रोह किया था; पर गुलाबसिंह ने उसे भी युद्ध में मार डाला और रजावड़ी की ओर प्रस्थान किया।

सन् १८३८ में महाराज रणजीतसिंह जम्बू गए थे। गुलाबसिंह और ध्यानसिंह ने उस अवसर पर महाराज का बहुत आदर सत्कार किया था और उनके स्वागत, भेंट और भोज आदि में प्रायः सवा-लाख रुपए खर्च किए थे। वहीं गुलाबसिंह ने रणवीरसिंह को भी महाराज के समक्ष उपस्थित किया और दरबार में उन्हें महाराज के सामने स्थान दिलाया था। दूसरे दिन महाराज ठाकुरजी के दर्शनों के लिये ठाकुरद्वारे में गए थे; उस दिन उनके साथ केवल गुलाबसिंह, ध्यानसिंह और मिश्र रामकृष्णजी थे। दो दिन जम्बू में ठहर कर महाराज वहाँ से चले गए। चलते समय गुलाबसिंह ने एक हाथी, एक सुनहला हौदा, कई घोड़े और अन्य अनेक बहु-मूल्य पदार्थ महाराज को भेंट किए थे। इसके अतिरिक्त महाराज के दरबारियों को भी उन्होंने बहुत कुछ भेंट किया था। मि० फ़्रेडरिक मैकिसन को भी एक ख़िलत मिली थी और फ़क़ीर अजीज़-उद्दीन द्वारा उन्हें कह दिया गया था कि गुलाबसिंह का लाहौर वाला मकान भी उनकी नज़र था।

दूसरे वर्ष सन् १८३९ में (शुक्रवार, १५ आषाढ़ संवत् १८९६ वि०) महाराज रणजीतसिंह का देहान्त हो गया। जब पेशावर में यह समाचार गुलाबसिंह को मिला वे अत्यन्त दुःखी हुए। महाराज खड़गसिंह ने राज्याधिकार पाकर चेतसिंह को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। चेतसिंह दुश्चरित्र और दुष्ट स्वभाव का आदमी था। स्वयं खड़गसिंह भी अदूरदर्शी थे और उन्होंने छल करके कई सरदारों को मरवा डाला

था। इसलिये एक दिन राजा सुचेतसिंह जमादार .खुशहालसिंह लहनासिंह मजीठिया आदि कई बड़े बड़े सरदारों ने राजकुमार नौनिहालसिंह के पास जाकर उन्हें राज्य की दुरवस्था आदि की सूचना दी। इस पर राजकुमार ने उत्तर दिया कि यद्यपि किसी दूषित अंग को काट डालने से शरीर को कुछ वेदना होती है तथापि उससे जीवन की रक्षा अवश्य होती है; इसलिये यद्यपि चेतसिंह के न रहने पर महाराज खड़गसिंह को कुछ कष्ट अवश्य होगा पर तो भी अनेक भारी संकटों से बचने के लिये यदि कल आप लोग सूर्योदय से पहले राजमहल में आकर चेतसिंह के प्राण लेलें तो बहुत अच्छा हो। सब लोग इस प्रस्ताव से सहमत हुए और उन्होंने चेतसिंह की हत्या करने की शपथ खाई। सरदार लहनासिंह साधु पुरुष थे, इसलिये उन्होंने हत्या में सम्मिलित होना तो अस्वीकार किया, पर इस बात की शपथ खा ली कि वे यह भेद किसी पर प्रकट न करेंगे। इसी निश्चय के अनुसार दूसरे दिन प्रातःकाल सब सरदार राजमहल में राजकुमार नौनिहालसिंह के पास पहुँचे और उन्हें साथ लेकर महाराज खड़गसिंह के शयनागार में घुसे। आहट पाकर पहरेदार भी जाग उठे, पर जब उन्होंने राजकुमार नौनिहालसिंह और राजा ध्यानसिंह को देखा तो वे चुप हो रहे। इस बीच में महाराज भी उठकर ईश्वराराधन कर रहे थे; इतने में गुलाबसिंह ने कान्हसिंह और एक दूसरे फ़रोश को बन्दूक़ से मार गिराया। इसपर महाराज ने उठकर अपने शयनागार का द्वार अन्दर से बन्द कर लेना चाहा, पर राजकुमार द्वार के आगे अड़कर खड़े हो गए और सब सरदार अन्दर चले गए। महाराज का स्नेह चेतसिंह पर बहुत अधिक था, इसलिये उन्होंने चेतसिंह को अपने गले से लगा लिया। सब सरदार बलपूर्वक चेतसिंह को अपनी ओर खींचने लगे। चेतसिंह वहाँ से छूटकर तहख़ाने की ओर भागे, पर राजा ध्यानसिंह ने उन्हें भागने का अवसर न दिया और वहीं अपने .खंजर से उन्हें मार डाला। महाराज बहुत दुःखी होकर सब सरदारों को दुर्वचन सुनाने लगे। अपने पुत्र पर उनका क्रोध बहुत अधिक था, क्योंकि वे समझते थे कि उन्हीं ने राजपद पाने के अभिप्राय से यह षड्यन्त्र रचा है। इसीलिये उन्होंने अपने पुत्र से यह भी कह दिया कि यद्यपि तुमने राजपद पाने की अभिलाषा से यह काम किया है, तथापि तुम विश्वास रक्खो कि मेरी मृत्यु के बाद भी तुम्हें यह राज्य प्राप्त न होगा।

महाराज खड्गसिंह की यह भविष्यद्वाणी भी बहुत ठीक उतरी और सन् १८४० में जब उनका देहान्त हो गया तो उनकी दाह-क्रिया करके लौटते समय राजकुमार नौनिहालसिंह और मियाँ अधमसिंह पर क़िले की छत में से टूट कर एक बड़ा पत्थर आप ही आप गिर पड़ा और वे दोनों वहीं समाप्त हो गये। मृत्यु के समय नौनिहालसिंह की अवस्था २३ वर्ष से कुछ ही अधिक थी। गुलाबसिंह ने रामनगर में जब महाराज की मृत्यु का समाचार सुना तो वे पहले तो जम्बू गए और कुछ दिन वहाँ रह कर लाहौर चले आए। इधर राजा ध्यानसिंह ने नौनिहालसिंह की मृत्यु का समाचार छिपाने के लिए उनका मृत शरीर हजूरीबाग में भिजवा दिया और यह प्रसिद्ध कर दिया कि राजकुमार को केवल अधिक चोट आई है। उनकी चिकित्सा के लिए बाग़ में चिकित्सक और वैद्य आदि भी भेजे जाते थे। गुलाबसिंह के लाहौर पहुँचने पर यह समाचार महाराज रणजीतसिंह के पुत्र कुमार शेरसिंह के पास भेजा गया और उन्हें लाहौर बुलाया गया। उन्होंने लाहौर आकर नौनिहालसिंह की अन्त्येष्टि क्रिया की। पहले तो शेरसिंह को राजपद मिलने की आशा थी और राजा ध्यानसिंह तथा गुलाबसिंह उनके सहायक भी थे; पर जब उन्हें मालूम हुआ कि सन्धानवालिए तथा अन्य बड़े बूढ़े सरदार रानी चन्दकौर (कुँवरि) के पक्ष में हैं और उन्हीं को राज्य दिलाना चाहते हैं तो वे लौट कर कालानूर नामक स्थान पर चले गये। राजा ध्यानसिंह भी उनके साथ ही थे और उन्होंने शेरसिंह को राज्य

दिलवाने के लिये अनेक उपाय भी किए थे। राजा-ध्यानसिंह का खालसा सेना पर पूरा अधिकार था और उनकी आज्ञा पाकर सारी सेना शेरसिंह को राज्य दिलाने में सहायता देने के लिये तैयार होगई थी। सेना के बड़े बड़े सरदारों ने इस बात की भी प्रतिज्ञा करली थी कि शेरसिंह के लाहौर आते ही वे उनकी सलामी उतारेंगे और उनके अधीन हो जायँगे। सब प्रबन्ध ठीक करके राजा ध्यानसिंह जम्बू चले गये और करमसिंह नामक उनके विश्वासनीय सरदार लाहौर पहुँचे। करमसिंह ने लाहौर में सारी व्यवस्था अनुकूल देख कर शेरसिंह को समाचार भेजा और कहला दिया कि खालसा सेना के सरदार आप को निमंत्रण देते हैं और आप के स्वागत के लिए तैयार हैं। शेरसिंह भी यह समाचार पाते ही तुरन्त लाहौर पहुँचे। गुलाबसिंह ने एक नई चाल चली और सेना के सरदारों को एकत्र करके उनसे कहा कि राज्य की वास्तविक अधिकारिणी रानी साहबा हैं, इस लिये आप लोग भी उन्हीं के पक्ष में रहें। सरदारों ने ऊपर से तो यह बात मान ली, पर शेरसिंह के छावनी के समीप पहुँचते ही उन्होंने उनकी सलामी उतारी। यह दशा देख कर गुलाबसिंह क़िले में चले गये और अपनी तथा क़िले की रक्षा का प्रबन्ध करने लगे। ध्यानसिंह के पुत्र राजा हीरा-सिंह भी उस समय क़िले में ही थे। गुलाबसिंह ने उनसे कहा कि आप के पिता क़िले के बाहर हैं, इस लिए आप भी यहां से निकल जायँ। पर हीरासिंह ने उत्तर दिया कि आप भी मेरे पिता के तुल्य हैं, इसलिये मैं आप को छोड़ कर क़िले से बाहर नहीं जा सकता।

गुलाबसिंह के पास उस समय केवल एक छोटी सी तोप और दो हज़ार डोगरे सैनिक थे; पर क़िले के बाहरवाली सेना की संख्या पचास हज़ार थी। इसके सिवा उन लोगों के पास तोपें भी ३०० थीं। बाहर की सेना ने हजूरीबाग के सामनेवाले मैदान में मोरचा बाँध कर क़िलेवालों से आत्मसमर्पण कराना चाहा; पर सूबेदार छपाछप ने उत्तर दिया कि बिना गुलाबसिंह की आज्ञा के ऐसा नहीं हो सकता। इस पर बाहरवाली सेना ने क़िले पर धावा करके सूबेदार और उसके सिपाहियों को मार डाला और क़िले का दरवाज़ा तोड़ दिया। पर तो भी गुलाबसिंह की सेना लड़ती और गोलियाँ बर-साती ही रही और शत्रु आगे न बढ़ सके। क़िले में दो पलटनें पहले से ही थीं जो आरम्भ में शेर-सिंह के पक्ष में थीं, इसलिए गुलाबसिंह ने उनके अस्त्रागार पर अपना अधिकार करके उन्हें बेकाम कर दिया। खालसा सेना ने बादशाही मसजिद को अपना अस्त्रागार बना रक्खा था। इसलिये तोपख़ाने के अफ़सर गार्डन साहब ने उसे उड़ा देने का विचार किया। यदि गुलाबसिंह यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेते तो शेरसिंह की बहुत सी शक्ति नष्ट हो जाती; पर न जाने क्यों गुलाबसिंह ने ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी। इसी अवसर पर राजा ध्यानसिंह और राजा सुचेतसिंह भी बहुत सी नई सेना एकत्र करके आ पहुँचे। उन लोगों ने गुलाबसिंह से आत्म-समर्पण करने के लिए कहलाया। गुलाब-सिंह ने उत्तर दिया कि जब तक खालसा सेना गोलियाँ बरसाना बन्द न करेगी तब तक हमारी सेना आत्म-रक्षा करती ही रहेगी। इसी बीच में रानी चन्दकौर ने भी गुलाबसिंह के पास एक परवाना भेज कर उनसे कहा कि जिस प्रकार हो इस युद्ध की समाप्ति की जाय। इसके बाद ही गुलाबसिंह को एक और परवाना मिला, जिस पर महाराजा शेरसिंह, सरदार विजयसिंह, भाईसिंह, लहनासिंह, श्यामसिंह, अटारीवाले, और वेराटूरा साहब के हस्ताक्षर थे। उस परवाने में लिखा था कि यदि क़िले की सेना युद्ध बन्द कर दे तो गुलाब-सिंह को खालसा छावनी में प्रतिष्ठा-पूर्वक लाने के लिये बाबा महासिंह भेजे जा सकते हैं। गुलाबसिंह ने यह निमन्त्रण तुरन्त ही न स्वीकार कर लिया और एक पत्र इस आशय का लिख भेजा कि यदि शेरसिंह सात लाख रुपये वार्षिक आय की एक जागीर रानी हसाबा को देना स्वीकार करें तो युद्ध बन्द हो

सकता है। अन्त में एक दिन प्रभात के समय गुलाबसिंह क़िले में से निकल कर अपने साज सामान और हाथी घोड़ों सहित रावी नदी के किनारे पर जा ठहरे। उसी स्थान पर राजा ध्यानसिंह, सुचेतसिंह, तथा अन्य कई बड़े बड़े सरदार उनसे मिलने और उनके अनेक साथियों के मारे जाने का समाचार सुनाने के लिए उनके पास आये। कुछ सरदारों ने उनसे महाराज का पक्ष छोड़ कर महारानी की ओर जा मिलने का कारण भी पूछा। इस पर गुलाबसिंह ने उत्तर दिया कि यदि मैं क़िले पर अपना अधिकार न कर लेता तो वहाँ के अनेक बहुमूल्य पदार्थ लूट लिए और नष्ट कर दिए जाते; इसके सिवा राजमहल की स्त्रियों की रक्षा करना भी मेरा अभीष्ट था। महाराज शेरसिंह उनकी इन बातों से सन्तुष्ट हो गये और इसलिए उन्होंने गुलाबसिंह को ख़िलत और मनावर की जागीर देकर जम्बू भेज दिया।

जिस समय खालसा सेना लाहौर के क़िले को चारों ओर से घेर कर पड़ी हुई थी उस समय क़िले के अन्दर वाली सेना के अधिकारी और गुलाबसिंह के चचा दीवान हीराचन्द ने किसी प्रकार रानी चन्दकौर से गढ़ी और गढ़वाली के तालुक़ों को अपने अधीन कर लेने की आज्ञा प्राप्त कर ली थी। इसलिये पहले तो दीवान हीराचन्द ने सराय औरंगाबाद को—जिसे महाराज खड्गसिंह की सेना ने अपने अधीन कर लिया था—अपने अधिकार में किया और उसके बाद सुखचैनपुर का क़िला ले लिया। आगे चल कर उन्होंने कोट और मांगले के क़िले पर भी अपना अधिकार जमा लिया।

सन् १८४१ में काशमीर के सूबेदार मन्दवानसिंह को कुछ विद्रोहियों ने मार डाला था; इसलिए कुँअर प्रतापसिंह की अधीनता में महाराज शेरसिंह ने एक गोरखा पलटन को उन विद्रोहियों को दमन करने के लिये भेजा। महाराज के आज्ञानुसार गुलाबसिंह भी चार पलटनें, ६०० रुपया और दीवान निहालचन्द को अपने साथ लेकर भिंभर में प्रतापसिंह से जा मिले। उस प्रान्त में रसद की बहुत कमी थी इसलिये गुलाबसिंह ने अपनी आधी सेना को तो वहीं रोक रक्खा और शेष आधी सेना को दीवान निहालचन्द की अधीनता में आगे भेजा। मार्ग में बहुत अधिक वर्षा होने के कारण दीवान निहालचन्द को चार दिन तक शामियान नामक स्थान में ही रुक जाना पड़ा। इसके बाद दूधगंगा पार करने के बाद जब वे नैपुर नामक स्थान पर पहुँचे तो उनका सामना विद्रोहियों की दो पलटनों से हो गया। उसी अवसर पर कुँअर प्रतापसिंह और गुलाबसिंह भी वहीं आ पहुँचे और उन लोगों ने युद्ध करके विद्रोहियों को परास्त कर दिया। इस युद्ध में कुँअर साहब के ६०० सैनिक मारे गये थे। वहाँ से लौट कर गुलाबसिंह नैपुर पहुँचे और वहीं उन्होंने युद्ध में सम्मिलित होने वाली सेना में तैंतालीस हज़ार रुपये बाँटे। वहीं उन्होंने अपने रोगी और आहत सैनिकों की औषधि और सेवा-शुश्रूषा का भी प्रबन्ध किया। इसके बाद वे सेना को दीवान निहालचन्द की अधीनता में वहीं छोड़ कर शेरगढ़ चले गये। शेरगढ़ पहुँचने पर उन्हें और कुँअर प्रतापसिंह को महाराज की ओर से आज्ञा मिली कि वे लोग हाज़ारा ज़िले पर अपना अधिकार कर लें। तदनुसार वे लोग हज़ारा की ओर बढ़े पर पोखली और बागिस्तान तक—जहाँ के निवासी विद्रोही हो गये थे—किसी ने भी उनका विरोध न किया। हज़ारा ज़िले का कुछ अंश तो योंही और कुछ सेना की सहायता से अधिकार में कर लिया गया। इसके बाद कुँअर प्रतापसिंह तो अपने निवास-स्थान कृष्णगढ़ के क़िले में चले गये और गुलाबसिंह ने वहाँ से चार कोस की दूरी पर बाराकोट नामक स्थान में अपना डेरा डाला।

(शेष आगे)

सभा का कार्य्य-विवरण।

साधारण सभा।

शनिवार ता० २६ अक्टूबर १९१३, सन्ध्या के ५ बजे स्थान सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० ३० अगस्त १९१३) का कार्य्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) प्रबन्धकारिणी-समिति के ता० ७ जूलाई, १२ जूलाई, और ३० अगस्त १९१३ के कार्य्य-विवरण सूचनार्थ पढ़े गए।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के पत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

(१) बाबू गोविन्दवल्लभ पन्त, वकील, नैनीताल १॥) (२) बाबू रघुनन्दनप्रसाद गुप्त वैद्य, पो० टीटागढ़, ज़िला २४ पर्गना १॥) (३) बाबू मोहनदास पटेल, बीबी हटिया, काशी १॥) (४) बाबू बसोरेलाल सराफ, पो० भरगावाँ, तहसील सिहोरा रोड, ज़िला जबलपुर १॥) (५) पंडित प्रेमशंकर दवे, मुन्सरिम, डिस्ट्रिक्ट जजेज़ कोर्ट, भंडारा ३) (६) पंडित सीताराम पन्त शेष, सूत टोला, काशी १॥) (७) बाबू ब्रजराजदास, सिद्ध माता की गली, काशी १॥) (८) बाबू मुकद्दमदास, सोरा का कुवाँ, काशी १॥) (९) पंडित महावीर शर्म्मा, संस्कृत पाठशाला, परसपुर, ज़ि० गोंडा १॥) (१०) बाबू मंगलाप्रसाद खत्री, ठि०भगवानदास गोपीनाथ, कुंजगली, काशी १॥) (११) बाबू भगवानदास चेतनदास डागा, डागों का महल्ला, बीकानेर ५) (१२) बाबू गुलाबचन्द, गणेश दीक्षित का महल्ला, काशी १॥) (१३) पंडित सोमनाथ नायक पालना, भिखारीदास का महल्ला, काशी काशी १॥) (१४) पंडित कृष्णराव नायक मालवतकर, महल्ला नारायण दीक्षित, काशी १॥) (१५) पंडित हरीराम पाठक कावले, महल्ला नारायण दीक्षित, काशी १॥) (१६) बाबू लक्ष्मीनारायण, भावसिंह का महल्ला, काशी १॥) (१७) पंडित मन्नू जी जोशी, भिखारीदास का महल्ला, काशी १॥) (१८) बाबू छगनलाल, भिखारीदास का महल्ला, काशी १॥) (१९) बाबू रघुनन्दन प्रसाद बी० ए०, वकील विहार ज़ि० पटना १॥) (२०) बाबू गौरीशंकरसहाय, वकील, खंजरपुर, भागलपुर १॥) (२१) पं० जगन्नाथ प्रसाद पाँड़े, गोविन्दपुरा, काशी १॥) (२२) पं० भवानीशंकर गौर, महल्ला भिखारीदास, काशी १॥) (२३) पं० विश्वनाथशर्म्मा उपाध्याय, ताल महारानी कोठी, बनारस १॥) (२४) बाबू भगवान दास, काशी १॥) (२५) पं० सर्वानन्द शर्म्मा, संस्कृत पाठशाला, परसपुर ज़ि० गोंड़ा १॥)।

(४) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए।

(१) पं० लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री, गवर्नमेंट स्कूल–बाँदा। (२) पं० धूरन दुबे–मुन्सरिम मुन्सफ़ी–आज़मगढ़। (३) बाबू कमलाप्रसाद गोभिल–वैदय बोर्डिङ्ग हाउस। आगरा। (४) पं० विनायक राव केशव–फारेस्ट सटिलमेन्ट आफ़िसर, पिछोर। (५) पं० गणपति लाल चौबे, पेंशनर एजेन्सी इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स–रायपुर। (६) पं० चन्द्रसेन जैन वैद्य–इटावा। (७) बाबू ज्वालाप्रसाद मारवाड़ी, शिवपुर, हावड़ा। (८) बाबू लायकसिंह–डिपटी कलेक्टर हरदोई। (९) बाबू सर्यू-सिंह कलना खोर–पो० उसका–ज़ि० बस्ती। (१०) पं० खेतलदास मिश्र–एलायन्स बंक आफ़ शिमला–मसूरी। (११) लाला बाबूलाल–सेवाय होस्टल–मसूरी। (१२) लाला ज़ोरावरसिंह, कामदार महारानी राठौजी साहबा झालावाड़। (१३) पं० भागवतप्रसाद दुबे–कटरा–बाँदा। (१४) बाबू सिद्धगोपाल–मास्टर पो० खण्डेह–ज़ि० बाँदा। (१५) पंडित अलोपी कविराज–कालाकाँकर। (१६) बाबू माताप्रसाद निगम–रजिस्ट्रार क़ानूनगो–हमीरपुर। (१७) लाला बासुदेव मल रामस्वरूप–नज़ीबाबाद। (१८) पं० पंचाननशर्म्मा–सुरेमनपुर–बलिया। (१९) बाबू कुन्दनलाल–वकील–मुज़फ़्फ़रनगर। (२०) पं० मानचन्द शर्म्मा–मसूरी। (२१) बाबू राजाराम अग्रवाल ओवरसियर–सतलज सर्वे डिविज़न–लाहौर। (२२) पं० बदरीनारायण मिश्र–डिपटी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स–सीतापुर।

(२३) पं० प्रयागदत्त त्रिपाठी–ज़ि० बहराइच। (२४) पं० दयालाल दुबे–द्वितीयाध्यापक–हिन्दी स्कूल डूंगरपुर। (२५) बाबू श्यामलाल क्लर्क–स्टेशन अस्पताल–रुड़की ज़ि० सहारनपुर। (२६) बाबू जगन्नाथ नायक बोर्धा। (२७) बाबू आनन्दीलाल गुप्त–जुरहरा–भरतपुर। (२८) पं० दत्तात्रय काशीनाथ करमरकर–हेडक्लर्क–राली आफ़िस–धावर। (२९) बाबू महावीरप्रसाद ख़ज़ानची–नानपारा–बहराइच। (३०) बाबू रामलाल–भूपाल। (३१) बाबू पूर्णेन्दु श्रीवास्तव–हेडक्लर्क–डिस्ट्रिक् बोर्ड–बहराइच। (३२) ठाकुर दिग्विजयसिंह–कामदार पलसू पो० सहार–ज़ि० मथुरा। (३३) पं० द्वारकाप्रसाद ब्रह्मभट्ट–रोहली पो० सराय पिराग ज़ि० फर्रुखाबाद। (३४) पं० उदयराम शर्म्मा–बाडिया। (३५) कुं० मोतीलाल जैन, ठि० राय बहादुर सेठ चम्पालालजी–व्यावर। (३६) बाबू लक्ष्मीनारायण–मुरादाबाद। (३७) बाबू रामनाथराय–ज़ि० बलिया। (३८) पं० सदाशिव पाठक–अध्यापक सागबाड़ा–स्कूल डूँगरपुर। (३९) पं० रामदहिन पाठक–सुमेरपुर–ज़ि० बलिया। (४०) पं० जवाहिरलाल शास्त्री–खुरजा।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों से प्रार्थना की जाय कि यदि इनके इस्तीफ़े का कोई विशेष कारण न हो तो वे कृपापूर्वक उस पर पुनः विचार कर उसे लैाटा लें।

(५) मंत्री ने निम्नलिखित सभासदों की मृत्यु की सूचना दी—(१) बाबू सरयूप्रसादनारायणसिंह–सूर्य्यपुर, ज़ि० आज़मगढ़। (२) बाबू कन्हैयालालबी० ए० माडल हाई स्कूल–जबलपुर। (३) पं० गंगाशरण मिश्र–पुलिस इन्सपेक्टर–हरदोई। (४) ठाकुर सरयूप्रसाद सिंह–सब डिपटी इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल्स–फतहपुर। (५) पं० छविनाथ मिश्र बी० ए० असिस्टेन्ट इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल्स, अलमोड़ा।

सभा ने इस पर शोक प्रकट किया।

(६) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं। कुंवर क्षत्रपतिसिंह जी कालाकांकर

पञ्चाननपञ्चकम्
ऋतुविलासिका
श्रीरामविलाप
श्रीरमेशाष्टक
पुत्रशोक
ऋतुरसरूपक
फाग नहीं समर

एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल—कलकत्ता

Journal and Proceedings of the Asiatic Society for December, 1912 and January to May, 1913,

पं० बांकेबिहारीलाल—मुग़लसराय
शिवाजी विजय

बाबू पन्नालाल जैन—काशी
सनातन जैनग्रन्थमाला माला १ और २
सनातन जैनधर्म्म
महावीरस्वामी
षट्द्रव्यदिग्दर्शन
पं० बालगंगाधर तिलक का व्याख्यान (जैनधर्म्म पर)
आर्यधर्म्म
जैनतत्व ज्ञान एवं चरित्र
मनुष्येर स्वाभाविक खाद्य कि
जैन धर्म्म

स्वामी प्रकाशानन्दगिरि—काशी
औरङ्गज़ेबनामा भाग २

ठाकुर राधावल्लभ पाठक, मथुरा
स्वयं चिकित्सक

जैनमित्र कार्य्यालय, हीराबाग़—बम्बई
गृहस्थ धर्म्म

पं० रामदीन मिश्र—काव्यतीर्थ, ट्रेनिङ्गस्कूल, मोतिहारी
भारत का मेट्रिक्युलेशन हिन्दी इतिहास

पं० जीवानन्द शर्म्मा काव्यतीर्थ, उपदेशक साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
बाबा का व्याह

राय आत्माराम साहब, सिविल इञ्जीनियर, पटियाला
धर्म्मदिवाकर

गोस्वामी तुलसीधर शास्त्री, बैठक गोस्वामी आशानन्द—भंग

पतिव्रताभूषण
दिगम्बरजैनकार्य्यालय—सूरत
पुत्री को माता का सिखापन
श्री महावीर चरित्र
बाबू मथुरादास
प्रश्नोत्तर जड़तत्व विज्ञान भाग १ और २
सारस्वत अरोड़ वंश पुरोहित पंचज्ञाति सभा, अमृतसर
स्वजातिहितपत्र
मन्दराज की गवर्नमेंट
South Indian Inscriptions vol II (New Imperial Series vol X-1.
ख़रीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त
ध्यानयोगप्रकाश
महाभारतसार
नारीधर्मविचार भाग १ और २
सीता चरित्र भा० १, ५ और ६
एक अनपढ़ स्त्री की यात्रा
स्त्री ज्ञानमाला भा० १ और २
भारतवर्ष की वीर और विदुषी स्त्रियाँ भा० १ और २
गर्भरक्षाविधान
धर्म्म शिक्षा
भारतवर्ष की सच्ची देवियाँ
जापानी की कहानी
शिवाजी व रोशनआरा
कामकुसुमोद्यान
वनिताहितैषिणी भा० १
बालपंचरत्न
मादकद्रव्यखंडन
द्वैतानन्दतरंगिणी
श्रीमान् हनुमानजी का जीवनचरित्र भा० १ और २
महाराष्ट्रोदय
स्त्रीहितोपदेश
प्रार्थनाविधि
उपदेशमाला प्रथम भाग
शिशुपालन
भारत की प्राचीन झलक, पहिला भाग
संगीतरत्नप्रकाश प्रथम भाग
धर्म्मशिक्षा दूसरा भाग
ब्रह्मकुलवर्तमानदशादर्पण
बालबोधिनी भा० १. २. ३. ४. और ५
मारवाड़ी और पिशाचिनी
सुरजमुखी
भैरवी अर्थात् वीरकुमारी
आशिकों की कमबख़्ती
वीराङ्गना
आफ़त की बुढ़िया
शेक्सपियर के नाटक
आल्हा रामायण लंकाकांड
सतीदहन नाटक
शिवविवाह नाटक
आल्हारामायण आठों काण्ड
एकादशीमाहात्म्य भाषा
धनुषयज्ञलीला नाटक
वीरविनोद अर्थात् कर्ण पर्व
गंगनामा
अश्वविचार अर्थात् शालिहोत्र बड़ा
चोर की तीर्थयात्रा
कल्याणी
प्रेमयोगिनी
नेपाल का प्राचीन इतिहास
Indian Antiquary for August, 1913.

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई

—:०:—

प्रबन्धकारिणी समिति।

शनिवार ता० २९ नवम्बर १९१३ सन्ध्या के ५½ बजे स्थान सभाभवन।

(१) गत अधिवेशन (ता० २९ सितम्बर १९१३) का कार्य्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) बाबू श्यामसुन्दरदास जी के निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किए गए (क) सभा का वार्षिक अधिवेशन और वार्षिकोत्सव एक ही दिन

हुआ करे और उसमें बाहर के लोग भी निमन्त्रित किए जाया करें। प्रातःकाल सभा का वार्षिक अधिवेशन हो जिसमें वार्षिक रिपोर्ट हिसाब आदि पर विचार हो तथा अधिकारी चुने जाँय। दोपहर को विशेष विषयों पर विचार हो तथा सन्ध्या समय वार्षिकोत्सव किया जाय (ख) सभा के संरक्षकों के पास डेपुटेशन भेज कर कुछ वार्षिक सहायता प्राप्त करने का उद्योग किया जाय (ग) युक्तप्रान्त की हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की जो व्यवस्था इस समय वर्तमान है उससे हिन्दी को विशेष हानि पहुँचने की सम्भावना है—अतएव इस विषय पर विचार कर सभा गवर्न्मेंन्ट की सेवा में अपना वक्तव्य उपस्थित करे और यदि आवश्यक हो तो प्रान्त भर में इसके लिये आन्दोलन करे। (घ) हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों का कार्य्य इस वर्ष संयुक्त प्रदेश में समाप्त हो जायगा, व १९१४ का समय खाली है—अतएव इस वर्ष हरद्वार, मथुरा, प्रयाग, और काशी आदि स्थानों में पंडों की प्राचीन बहियों की जाँच की जाय और प्रत्येक शताब्दी के लेखों तथा अक्षरों की कई नक़लों का संग्रह किया जाय। इससे हिन्दी गद्य के इतिहास को जानने में सुगमता होगी।

निश्चय हुआ कि (क) यह स्वीकार किया जाय और मंत्री नियमों पर विचार कर आगामी अधिवेशन में सभा को यह सम्मति दें कि इसमें सफलता प्राप्त करने के लिये क्या प्रबन्ध किया जाय। (ख) संरक्षकों की सेवा में वार्षिक सहायता के लिये प्रार्थनापत्र भेजे जाँय। (ग) इस प्रस्ताव से सभा सहमत है, यूनिवर्सिटी की परीक्षाश्रों, सेकेण्डरी शिक्षा तथा प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में गवर्न्मेंण्ट की सेवा में प्रार्थनापत्र भेजे जाँय और इसे तयार करने के लिये निम्नलिखित सज्जनों की सब-कमेटी बना दी जाय अर्थात् बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०, बाबू गैारीशंकर प्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी० और पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०। (घ) यह स्वीकार किया जाय और सन् १९१४ में काशी प्रयाग, मथुरा, हरद्वार, नैमिषारण्य, मिश्रिक, चित्रकूट, सूकरक्षेत्र, बिठूर और अयोध्या के पंडों की बहियों की जाँच की जाय और इसकी सूचना गवर्न्मेंण्ट को दी जाय।

(३) बाबू माधवप्रसाद का १८ अक्टूबर १९१३ का पत्र उपस्थित किया गया, जिसमें उन्होंने काशी में न रहने के कारण सभा की प्रबन्धकारिणी समिति से इस्तोफ़ा दिया था।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और उनके स्थान पर पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० समिति के सभ्य चुने जाँय।

(४) भागलपुर के हिन्दी साहित्यसम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति के मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा से हिन्दी साहित्यप्रदर्शिनी के लिये चीज़ें माँगी थीं।

निश्चय हुआ कि उन्हें लिखा जाय कि वे कृपापूर्वक अपने किसी अधिकारी को सभा में भेज दें कि वे यहाँ से प्रदर्शिनी के लिये उपयुक्त वस्तुश्रों को ले जायं।

(५) सभा की ऋण की पूर्ति के लिये जिन सज्जनों से सहायता प्राप्त हुई है उनकी नामावली तथा स्थायी कोश का आज तक का निम्नलिखित हिसाब उपस्थित किया गया।

३१६१०।॥≡)।॥ कुलचन्दा आजतक प्राप्त
१०००) व्याज मद्धे सभा ने अपनी आप में से दिया।

३२६१०।॥≡)।॥

२४८०९)१ सभाभवन
२३७॥-) फुटकर व्यय
१९२३।=)। यात्राव्यय
१८३०॥)।॥ असबाब
३४४०।≡)४ व्याज
३१८।-)॥ छपाई

३२५५९॥)११
५१।=)१० बचत

३२६१०।॥≡)।॥

निश्चय हुआ कि (क) सभा की आय में से जो १०००) रु० व्याज मद्धे दिया गया है वह स्थायी कोष में जमा कर लिया जाय और व्याज मद्धे उसका व्यय लिख दिया जाय। (ख) ऋण की पूर्ति के लिये जिन सज्जनों ने सहायता दी है उनकी नामावली नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कर दी जाय। (ग) आगामी अधिवेशन में मंत्री उन सज्जनों की नामावली उपस्थित करें जिनके नाम पत्थर पर खुदवा कर सभा के पूर्व निश्चय के अनुसार लगाये जाने चाहिएं।

(६) निश्चय हुआ कि स्थायी कोश की बचत का रुपया पोस्टआफिस के सेविंग बंक में रख दिया जाय और मंत्री को अधिकार दिया जाय कि जब १००) रु० पूरा हो जाय तब वे उसका प्रोमिसरी नोट ख़रीद लिया करें।

(७) निश्चय हुआ कि सभाभवन के किवाड़े आदि रँगवाने तथा एक दफ्तरी ख़ाने के बनवाने का प्रस्ताव आगामी वर्ष के बजेट के समय विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(८) बिहार और उड़ीसा की गवर्न्मेन्ट के हिन्दी और उर्दू ट्रांसलेटर का २० नवम्बर १९१३ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने कार्यालय में एक असिस्टेंट की नियुक्ति के लिये किसी ऐसे ग्रेजुएट को चुनने के लिये लिखा था जो अँगरेज़ी और हिन्दी में पूर्ण योग्यता रखता हो और उर्दू भी जानता हो।

निश्चय हुआ कि इसकी सूचना नागरी प्रचारिणी पत्रिका में दे दी जाय और इसके लिये उपयुक्त व्यक्ति मिलने पर उन्हें लिखा जाय।

(९) पूना के भारत-इतिहाससंशोधक मंडल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि सभा अपनी प्रकाशित पुस्तकें उनकी पुस्तकों के परिवर्तन में उन्हें दिया करे।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(१०) मिर्ज़ापुर के उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने १००) रु० की स्वरचित पुस्तकें सभा को देने के लिये लिखा था और मंत्री ने सूचना दी कि पंडित गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री की १०० प्रतियाँ सभा को दी हैं।

निश्चय हुआ कि ये धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाँय।

(११) निश्चय हुआ कि बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा से प्रार्थना की जाय कि वे कृपा कर भागलपुर में साहित्य सम्मेलन के समय सभा की पुस्तकों की बिक्री का यथोचित प्रबन्ध कर दें।

(१२) बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति साहित्यसम्मेलन के पुस्तकालय के लिये दी जाय और प्रथम सम्मेलन की रिपोर्टों की पचास पचास प्रतियाँ रखकर शेष पुस्तकें सम्मेलन कार्यालय में भेज दी जायँ और जितनी आय इसकी बिक्री से हुई हो वह उनसे माँगी जाय।

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:०:—

साधारण सभा

शनिवार तारीख़ २९ नवम्बर १९१३—सन्ध्या के ५ बजे स्थान-सभाभवन

(१) गत अधिवेशन (तारीख २६ अक्टूबर १९१३) का कार्य-विवरण उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(२) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के पत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए—

(१) बाबू माधवप्रसाद, ठठेरीबाज़ार, काशी १॥) (२) कुंवर सुखसिंह पोकरन, सुपरेण्टेण्डेण्ट आफ़ हाकिम्स, जुनूबी डिवीजन, सोतज, मारवाड़ ५) (३) बाबू सतीशचन्द्र चक्रवर्ती, सेक्रटरी नवग्राम साहित्य-समिति पोष्टाफ़िस हेमनगर, ज़ि० मैमनसिंह ५) (४) बाबू देवीप्रसाद खत्री, भक्तिकुटीर, लकसा,

काशी १॥) (५) बाबू गंगाराम महाजन, स्थान लाल-ग्राम, ज़िला फ़र्रुखाबाद १॥) (६) पण्डित शिवदर्शन-लाल वाजपेयी; औरैया इटावा ३) (७) बाबू नवाब-लाल बी० ए०, वकील, बलिया ५) (८) पण्डित नारायण लाल तिवारी—ए० आर० इन्स्टीटयूट—पूसा १॥) (९) बाबू रामेश्वरदयाल—ए० आर० इन्स्टीट्यूट—पूसा १॥) (१०) बाबू रामदास, महल्ला ख़ालिसहाट—रायबरेली १॥) (११) श्रीयुत पं० हरिशङ्कर दयाशंकर दवे—एग्रिकलचरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूसा १॥) (१२) श्रीयुत मिस्टर जहाँगीर सोहराबजी तारापुरवाला—हैडमास्टर सेण्ट्रल हिन्दू कालिजिएट स्कूल काशी ५) (१३) पण्डित जयगोपाल शर्म्मा चटर्जी—जनरल सेक्रेटरी—श्री संस्कृत पुस्तकोन्नतिसभा इटावा ३) (१४) कुंअर दिल्लीपति सिंह—बरगावा—पो० पिसावा—ज़िला सीतापुर ३) (१५) पण्डित मनसाराम सारस्वत—बोपाराय पर्गना नकोदर—ज़िला जालंधर ३) (१६) श्रीयुत पण्डित शिवदान थानवी—मैनेजर डायमंड जुबिली बुकडिपो—जोधपुर (मारवाड़) १॥) (१७) महाराजकुमार समर्थ सिंहजी—रावटी, जोधपुर ४)

(३) निम्नलिखित सभासदों के इस्तीफ़े उपस्थित किए गए:—

(१) पण्डित जगन्नाथ शर्म्मा—कानपुर। (२) बाबू रामरत्नलाल—डिपटी कलेकृर—फ़तहगढ़। (३) डाकृर शिवलाल शर्म्मा—मेरठ सिटी।

निश्चय हुआ कि इनके इस्तीफ़े स्वीकार किये जाँय।

(४) उपमन्त्री ने कलकत्ते के बाबू रामनारायण खन्ना की मृत्यु की सूचना दी। जिस पर सभा ने शोक प्रगट किया।

(५) निश्चय हुआ कि चतुर्थ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिये निम्न लिखित सज्जन सभा की ओर से प्रतिनिधि चुने जायँ—(१) महात्मा मुंशीराम काँगड़ी। (२) पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा अजमेर। (३) पण्डित श्याम बिहारी मिश्र एम० ए० छत्रपुर। (४) पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा बी० ए०—अजमेर। (५) आनरेब्ल पण्डित मदनमोहन मालवीय बी० ए०, एल एल० बी० प्रयाग। (६) बाबू काशीप्रसाद जायसवाल कलकत्ता। (७) पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी—कानपुर। (८) पण्डित सूर्यनारायण दीक्षित एम० ए० वकील—लखीमपुर। (९) बाबू लक्ष्मीनारायणलाल वकील गया। (१०) पण्डित चन्द्रशेखरधर मिश्र चम्पारन। (११) पण्डित बालकृष्ण भट्ट, अहियापुर, प्रयाग। (१२) उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी मिर्ज़ापुर। (१३) पण्डित जगदीश्वरप्रसाद ओझा—दरभंगा। (१४) बाबू जागेश्वरप्रसाद नन्दे, मऊ बाजिदपुर (१५) राय पूरनचन्द—पटना। (१६) पण्डित रामावतार पाण्डेय एम० ए० बाँकीपुर। (१७) डाकृर लक्ष्मीपति—दानापुर। (१८) बाबू गोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा—भागलपुर। (१९) पंडित राधाचरण गोस्वामी, वृन्दावन। (२०) पंडित जगन्नाथप्रसाद पांडेय, वकील मुज़फ्फ़रपुर। (२१) बाबू गोपाललाल खत्री, लखनऊ। (२२) बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०—लखनऊ। (२३) राय कृष्णजी काशी। (२४) पण्डित कृष्णराम मेहता बी० ए०, एल० एल० बी० काशी। (२५) बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए०, एल एल० बी०, काशी। (२६) बाबू जगन्मोहन वर्म्मा—काशी। (२७) पण्डित देवीप्रसाद उपाध्याय, काशी। (२८) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा—काशी। (३०) पंडित रामचन्द्र शुक्ल काशी। (३१) पण्डित मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए०—काशी। (३२) पंडित भुवनेश्वर मिश्र—वकील—दरभंगा। (३३) पंडित शुकदेव विहारी मिश्र बी० ए०—सीतापुर। (३४) पंडित गणेशविहारी मिश्र—लखनऊ। (३५) बाबू शिवप्रसाद गुप्त—काशी। (३६) बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, प्रयाग। (३७) बाबू जयरामदास—काशी।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं।

संयुक्त-प्रदेश के शिक्षा-विभाग के डाइरेकृर—

The Sacred Laws of the Aryans.

पं० शंकर गजानन पुरोहित बी० ए० एल एल० बी० सदाशिव पेठ पूना।

श्रीतुलसी रामायण (मराठी भाषान्तर सहित)।

पं० बच्चन पाँड़े-गवर्नमेंट हाई स्कूल-इटावा
होरेशियस २ प्रति।
पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० काशी
भारत के प्रसिद्ध पुरुष। सरवरिया।
बाबू पन्नालाल, मंत्री जैनधर्म्म-प्रचारिणी सभा-काशी
तत्त्वार्थ राजवार्तिक।
पं० लज्जाराम शर्म्मा-बूँदी
उम्मेदसिंह चरित्र।
पं० हरिशंकर शर्म्मा, हरदुआगंज-अलीगढ़
अनुरागरत्न।
पं० राजेन्द्रनाथ, श्यामसवाई मंदिर, डबोई
भारतीयमत-दर्पण। सम्राट् शुभागमन।
पं० इन्दु शर्म्मा भारद्वाज निरुक्तरत्न, महाविद्यालय, ज्वालापुर
अनङ्गराज कर्ण।
गृहलक्ष्मी कार्य्यालय, कर्नलगंज-इलाहाबाद
कन्याकौमुदी। वनिता-बुद्धि-विलास।
बाबू गौरीशंकर प्रसाद-वकील—काशी
मेडिकल जूरिसप्रूडेन्स।
सद्धर्म्मप्रचारक कार्य्यालय-दिल्ली
उपनिषदों की भूमिका।
बाबू ज्योतिप्रसाद, सम्पादक, जैनप्रचारक, देवबन्द सहारनपुर
ज्योतिप्रसाद भजनमाला। मनोरमा। सुन्दर चरित्र।
बाबू मूलचन्द किशनदास कापड़िया, दिगम्बर जैन कार्य्यालय, कनावाड़ी सूरत
शुं ईश्वर जगत कर्त्ता छे। जैनसिद्धान्त-प्रवेशिका।
मुंशी रामध्यानलाल-सुपरवाइज़र कानूनगो-जौनपुर
शतपंच चौपाई रामायण।
पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा-अजमेर
टाड राजस्थान प्रथम खंड। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री १०१ प्रति।
बाबू विश्वनाथप्रसाद खत्री-कचौरी गली—काशी
जयन्त। महाराष्ट्र रहस्य।
बाबू जयशंकरप्रसाद-काशी
काननकुसुम।
पं० माधवप्रसाद पाठक—काशी
हिन्दी-व्याकरण।
पं० माधवराव सप्रे—रायपुर
दासबोध।
पं० देवीदत्त शर्म्मा, भुआली, ज़ि० नैनीताल
तमाकू सिग्रेट निषेध। किन्डरगार्टन बुक नं० १। जपाकुसुम।

ख़रीदी गईं तथा परिवर्तन में प्राप्त—
विनय पत्रिका।
चोर सुल्तान।
हिन्दी केमिस्ट्री।
विद्युत्-शास्त्र।
वनस्पति-शास्त्र।
बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य।
महाभारत भा० १ और २।
बुद्धदेव का जीवन चरित्र।
स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान नं० १–८।
बादशाह लियर।
प्रेम वा प्राणसमर्पण।
नीति-संग्रह।
शिरोमणि।
हिन्दी बँगला शिक्षा भाग १ और २
भारत में पोर्च्युगीज़।
राजसिंह।
भगवद्गीता।
राधाकान्त।
अङ्गरेज़ी शिक्षा भाग १, २, ३, और ४।
स्वर्ण-कमल।

गौरीशंकर प्रसाद।
मंत्री,
नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी

सूचना।

सभा के नियमानुसार आगामी वार्षिक चुनाव के संबंध में जिन सभासदों को कोई प्रस्ताव करना हो वे कृपाकर २० मई १९१४ तक उसे लिख कर भेजने का कष्ट करें।

गौरीशंकर प्रसाद,
मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा।
काशी।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

भाग १९ | जनवरी और फ़रवरी, १९१४. | संख्या ७—८

राविया*

[ले० पंडित केदारनाथ पाठक।]

जिस भाँति हिन्दू नारियों में गार्गी, मीराबाई, कर्माबाई इत्यादि, और ईसाइयों में सेण्ट सिसिलिया, गोया प्रभृति, धार्मिक जीवन में उन्नति कर संसार के इतिहास में अपना नाम चिरस्थायी कर गई हैं और आगे आनेवाले भक्तों की श्रद्धा भक्ति आकर्षण करने की अधिकारिणी हैं उसी भाँति मुसल्मान महिलाओं में ,ज़ुलेख़ा, ,ज़ुबेदा प्रभृति मनस्विनी, उन्नतहृदया नारियों ने अपने महच्चरित्र के द्वारा अगणित भक्तों का हृदय सिंचन किया है। मुसल्मानों में, शिया और सुन्नी ये दो सम्प्रदाय* प्रधान माने जाने पर भी और अनेकों उपसम्प्रदाय हम लोगों की भाँति हैं। सब शाखा-सम्प्रदायों में "सूफ़ी" सम्प्रदाय प्रधान और जगत्-प्रसिद्ध है। इस महत् सम्प्रदाय में बहुतेरे भक्त तथा ज्ञानी पुरुषों ने दीक्षित होकर इसकी जैसी उज्ज्वल कीर्ति बढ़ाई है वह जगत् के किसी धर्म की अपेक्षा कम नहीं कही जा सकती। इस धर्म में वेदान्त मत का प्रतिपादन यथेष्ट भाव से दिखाई देता है। हमारे वैष्णव धर्म के साथ इसकी यथेष्ट सहृदयता पाई जाती है।

* मूल-प्रबन्धलेखक महाशय ने "रविया" नाम दिया है। शुद्ध शब्द क्या है, मैं नहीं जानता। पर फ़ारसी के सुयोग्य विद्वान् और हिन्दी के जानकार लेखक स्वर्गीय लाला बालमुकुन्द गुप्त से पूछो तो उन्होंने बताया कि शुद्ध शब्द है "राविया"; "रविया" बङ्गाली साँचे में ढाला गया है। अस्तु मैंने भी उक्त महानुभाव के ही आदेशानुसार "राविया" रक्खा है। यदि इसमें भी कोई त्रुटि हो तो मेरी ही अल्पज्ञता का दोष है। तदर्थ पाठकगण मुझको क्षमा करें।

अनुवादक।

* शिया सम्प्रदाय के प्रधान धर्म्म ग्रन्थ "मजलिस-उल-मोमीन" द्वारा अनुमोदित और-Oriental Biographical Dictionary द्वारा समर्थित। किन्तु 'ग़यास उल लुग़ात' नामक कोश में तीन सम्प्रदायों का उल्लेख है।

यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि "सूफ़ी" शब्द का ठीक अर्थ क्या है। कोई कोई विद्वान् इसे अरबी "सूफ़" (पशम) धातु से निकला मानते हैं; कारण, इस सम्प्रदाय के साधु संन्यासी पशमी पोशाक पहनते हैं। कोई इसकी व्युत्पत्ति साफ़ (पवित्र) शब्द से बताते हैं, क्योंकि "सूफ़ी" मतावलम्बी कायमनोवाक्य से पवित्रता से रहना ही आत्म-साधन का परम उपाय मानते हैं। कोई यूनानी "सोफ़िया" (ज्ञान) से भी इसे निकालते हैं क्योंकि सूफ़ी "ब्रह्मसाधन" का प्रधान साधन ज्ञान मानते हैं*। सूफ़ी सम्प्रदाय के दो भेद हैं एक "मुकल्लम" अर्थात् तोषामोदकारी सम्प्रदाय, जो कृत्रिम कर्म्मों और आडम्बरों के अनुष्ठान का पक्षपाती† है और दूसरा "सूफ़ी" जो आत्मनिग्रह और कृच्छ्रतासाधन द्वारा मनसंयम का यत्न ही परम कर्त्तव्य मानता है। इस "सूफ़ी" धर्म का पारस देश में ही अधिक प्रचार हुआ था। इसके अनुयायी क़ुरान को केवल भगवद्वाणी मान कर उसपर श्रद्धा मात्र करते हैं। धर्म्मपालन करने में वे "पीर" (गुरु) के उपदेश तथा अपने विज्ञान और विचार ही का अनुसरण करते हैं। पाँच बार नमाज़ पढ़ने की अपेक्षा वे निरन्तर उपासना करने के पक्षपाती हैं। क़ुरान के निर्दिष्ट मंत्र पाठ करने की अपेक्षा वे अपने अपने मनोभावों के द्वारा उपासना और प्रार्थना उत्तम समझते हैं। वे प्रेम तथा अन्य निरपेक्ष स्वाधीन उपासना ही को साधन का सर्वोत्तम उपाय मानते हैं। "इलहाम" वा साधन के तीन सोपान हैं। पहला प्रार्थना तथा विषय-चिन्ता-विसर्जन। दूसरा क़ुरान, हदीस, सुन्नत-प्रभृति का पाठ छोड़ एकान्त में एकाग्र चित्त से ईश्वराराधन तथा "अल्लाह" के नाम का निरंतर स्मरण। यहाँ तक कि वह नाम अनायास ही 'जागृतः स्वपतो वापि गच्छतस्तिष्ठतोऽपि वा' उच्चरित होने लगे। तीसरा मानस जप, यहाँ तक कि शब्द का लोप हो जाय केवल अर्थ और भाव में समग्र हृदय परिपूर्ण हो जाय। इन तीनों के उपरान्त सामीप्य प्राप्त होता है। जो लोग ब्रह्मसामीप्य प्राप्त करते हैं वे "इलहामिया" कहलाते हैं। इलहामिया होने के उपरान्त फिर जो ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करते हैं वे "इत्तिहादिया" कहलाते हैं। इन लोगों के मत से सिर्फ़ शुष्क ज्ञान ही ब्रह्मप्राप्ति का उपाय नहीं है। विचार वितर्क से सारा परदा नहीं हट सकता; आत्म-निवेश के द्वारा ही आन्तरिक धारणा परिस्फुट होती है*। जैसे नदी के जल से बुलबुला या फेन उठता है और फिर उसी नदी के जल में विलीन हो जाता है, उसी भाँति ब्रह्म में आत्मा का मिल जाना भी मानव जीवन की सार्थकता है†। ब्रह्म में अपने अहंभाव को विसर्जन कर देना ही सूफ़ियों की एकान्त वासना होती है। आत्मा परमात्मा का अंश मात्र है, परमात्मा में आत्मा को मिला देने ही की सूफ़ी लोग चेष्टा किया करते हैं। विश्ववस्तुमात्र ही प्रच्छन्न रूप में ईश्वर हैं। सभी पदार्थों में ईश्वर वास कर रहा है, वही एक मात्र सत्य, शिव, और सुन्दर है, और सब मिथ्या-माया है। इसलिये प्रेम ही सबका सार है। महात्मा शेख़ सादी ने कहा है "हम सत्यस्वरूप ईश्वर के नाम की शपथ करके कहते हैं कि जब उसने अपनी विभूति को हमारे सम्मुख प्रकाशित किया तब सारा मिथ्या मायाजाल छिन्न भिन्न हो गया; वर्तमान जीवन प्रियतम के विरह की भाँति है"। सूफ़ी अनेक प्रकार के तुच्छ और घृणित पदार्थों में विक्षिप्त मन को प्राकृतिक सौन्दर्य, सङ्गीत, शिल्पकला इत्यादि मनोमुग्धकारी समग्र विषयों में घुमा फिरा कर फिर प्रियतम के सम्मुख पहुँचाने की चेष्टा करते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य को उचित है कि वह इस प्रेम की सयत्न रक्षा करे और संयम तथा चित्तनिवेश के द्वारा सारी चिन्ताओं तथा भावनाओं को ईश्वर के पवित्र चरणों में लगा दे। तब वह धीरे धीरे उसके समीप पहुँचेगा और

* सांख्य दर्शन का मत।

† अनेक अंशों में पूर्वमीमांसा के अनुकूल।

* पतञ्जलि दर्शन का मत।

† वेदान्त का मत।

अन्त में उसमें लीन हो जायगा*। हिजरी की दूसरी शताब्दी में सूफ़ी धर्म्म ने अद्वैत वाद का आश्रय लेकर धर्म्मप्रेमियों में एक अपूर्व कौतूहल उत्पन्न कर दिया†। इसी कारण इस सम्प्रदाय को मुसलमान-समाज में विशेष लाञ्छन सहना पड़ा जिससे ये लोग अपने को गुप्त रखने की अधिक चेष्टा करते हैं। "हम सत्य स्वरूप हैं, हम जिससे प्रेम करते हैं वही हम हैं और हमीं वह है। हममें और उसमें कोई भेद नहीं, अभेद है। जब तुम उसको देखते हो तब हमें देखते हो; जब हमें देखते हो तब उसको देखते हो" इसी महत् सिद्धान्त को सर्वसाधारण में फैलाने के कारण बग़दादनिवासी 'अल्हुल्लाज' नामक महात्मा को ३०९ हिजरी में अपने प्राण से हाथ धोना पड़ा। अथवा यों कहिए कि इस महत् धर्म्म के प्रचार के हेतु इस महात्मा ने अपने को .क़ुरबान कर दिया। मुसलमान-जगत् में जितने प्रेमिक ईश्वर-भक्तों ने जन्म धारण किया है, उन सबकी जीवनी और महत् उपदेशों का संग्रह करके सूफ़ी साहित्य भी हम लोगों के वैष्णव साहित्य के सदृश मधुर कोमल और नये नये भावों से भरा पूरा है। इनमें से महाकवि सादी, हाफ़िज़, खुसरो*, निज़ामी, सनाई, फरीदीन अत्तार और मौलाना जलालुद्दीन रूमी प्रधान हैं। इन लोगों के रचित ग्रन्थ सूफ़ियों के निकट पूजनीय और विद्वानों के निकट आदर की वस्तु हैं। जलालुद्दीन रूमी की मसनवी इस धर्म में बड़ी ही श्रद्धा तथा आदर की दृष्टि से देखी जाती है। कितने लोग "उमरख़य्याम" को भी सूफ़ी कहने का दावा करते हैं। उनकी दो चार ब्रह्मवादपूर्ण कविताएँ प्राप्त होने पर भी उनकी संशयवादपूर्ण कविताओं की अधिकता मन में द्विविधा उत्पन्न कर देती है। स्त्री भक्तिनों में राबिया, .ज़ुलेख़ा, .ज़ुबेदा, (इतिहासप्रसिद्ध हारून-अलरशीद की पत्नी) इत्यादि प्रधान हैं। इन लोगों का सम्पूर्ण इतिहास किसी ग्रन्थ में लिखा हुआ नहीं पाया जाता। इन लोगों के वृत्तान्त श्रुतिपरम्परा द्वारा उसी सम्प्रदाय के भक्त लोगों के पास रक्षित हैं। इन लोगों की सब बातों का अनुसन्धान करने के लिए किसी योग्य सूफ़ी मौलवी की सहायता के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है। पर उनको पहचान लेना भी कुछ सहज नहीं है।

इन सूफ़ी भक्तों की उपासना-प्रणाली के जुदा जुदा भेद हैं। इन लोगों ने .क़ुरान-निषिद्ध चीज़ों को लेकर उनका एक एक कल्पित अर्थ गढ़ा है और उन्हीं को अपनी उपासना का अंग बना लिया है। जैसे मदिरा—ईश्वरीय प्रेम, साक़ी—गुरु इत्यादि। ये लोग उपासना को "सुलूक" (यात्रा) कहते हैं और उपासक को "सालीक" (यात्री)। इस यात्रा की आठ अवस्थाएँ हैं। (१) आबदियत—सेवा, (२) इश्क़—प्रेम, (३) ज़ुहद—निवृत्ति वा एकान्तवास, (४) मारफ़त—ज्ञान, (५) वज्द या हाल—मत्तता, (६) हक़ीक़त—सत्य, (७) वस्ल—मिलना वा सायुज्य प्राप्ति, (८) फना—निर्वाण—मोक्ष।

---

* इस विषय में अँगरेज़ी भाषा के राजकवि टेनिसन लिखते हैं—

"That each who seems a separate whole,
Should move his rounds, and finishing all,
The skirts of Self, again should fall,
Remerging in the general soul.
Is faith as vague as all unsweet?
Eternal form shall still divide,
The eternal soul from all beside;
And I shall meet him when we meet."

† "Mysticism developed into Sufism." Spirit of Islam and faith of Islam.

* Beal's Oriental Biographical Dictionary. History of the Saracens.

* खुसरो कहता है:—
प्रेम ही हमारे पूजन की सामग्री है। इस्लाम की हमें क्या आवश्यकता है—जैसे—

"काफ़िरे इश्कम मुसलमानी मरा दरकार नेस्त।
हर रगे मन तार गश्तः हाजते ज़ुन्नार नेस्त॥

हाफ़िज़ के जीवन में मत्तता का, सादी के जीवन में ज्ञान का, ज़ुलेख़ा के जीवन में प्रेम का, ज़ुबेदा के जीवन में सेवा का बहुत ही उत्तमता के साथ परिस्फुरण हुआ है। राबिया का जीवन सभी अंशों में चमत्कार का विकाश रूप है। राबिया दरिद्र पिता की कन्या थी *। उसके पिता का नाम "इस्माइल" था, जो 'आदर' वंश का था। इसी से राबिया पिछले जीवन में "राबिया-अल-अदारिया" नाम से प्रसिद्ध हुई † कारण, राबिया आजन्मकुमारी थी। अरब की मरु भूमि के एक छोटे से गाँव में उसका जन्म हुआ था। वह बचपन में ही मातृविहीना हो गई थी। उस समय इस्माइल को ही माता और पिता दोनों का काम करना पड़ता था। बूढ़ा इस्माइल मेहनत मज़दूरी करने के लिये रोज घर से बाहर चला जाया करता था। बालिका राबिया अकेली निर्जन कुटी में बैठ सन्ध्या तक पिता के आने की राह देखा करती। दिन भर के थके हुए पिता के हेतु उस मरू भूमि में दुष्प्राप्य जल दूर से लाकर पहले रख देती थी। आने पर क्लान्त पिता को दाना पानी देकर शीतल करती। धीरे धीरे राबिया बालिका से किशोर अवस्था को प्राप्त हुई, तथा कर्म्मठ, सेवा-परायण और गम्भीर हो चली। नौ, दस वर्ष की अवस्था में ही वह सयानी स्त्रियों के समान बातचीत और घर का काम धन्धा करती थी।

राबिया के गाँव के चारों ओर 'बद्दू' जाति के डाकुओं का वास था। वे लोग कभी २ गाँवों पर आक्रमण किया करते और स्त्री पुरुष जिसको पाते पकड़ ले जाते और उनको गुलाम बना कर बेच देते या अपने पास ही रखते थे। जिस समय राबिया की अवस्था १२—१३ वर्ष की थी उस समय एक दिन इन डाकुओं के झुंड ने ग्राम पर आक्रमण किया और वे अन्यान्य नर नारियों के साथ राबिया के वृद्ध पिता इस्माइल को भी पकड़ ले गए। अब राबिया संसार में अकेली हो गई। अभी वह इस योग्य भी न थी कि कहीं किसी के यहाँ मेहनत मज़दूरी करके पेट पालने का प्रबन्ध कर सके। इस निस्सहाया बालिका को ऐसी शोचनीय अवस्था में देख सब गाँववाले बहुत दुःखित हुए। अंत में सब बड़े बूढ़े लोगों ने मिल कर यह निश्चय किया कि राबिया क्रमशः एक एक दिन एक एक गृहस्थ के यहाँ मेहमान रहा करे और उस दिन जहाँ तक बन पड़े अपने उस अन्नदाता गृहस्थ के घर के काम काज में भी सहायता दिया करे जिसमें उसका सुगमता से निर्वाह हो जाय। ग्रामवासी गृहस्थ प्रायः दरिद्र होते हैं, किन्तु दरिद्र होने पर भी अरब ग्रामीणों का आतिथ्य प्रसिद्ध है। इस प्रकार राबिया का दिन कटने लगा। वह किसी न किसी गृहस्थ के घर नित्य जाकर काम करती और खाने को पाती। सन्ध्या समय अपने दयामय पूज्य पिता की कुटी की गोद में जाके आश्रय लेती। गाँव की बड़ी बूढ़ी भी राबिया पर दया कर के उसी के पास आके सो रहतीं। राबिया रात को सोते २ अपने स्नेहमय पिता की चिन्ता किया करती—ठंढी साँस से अपने हृदय की वेदना को दूर करती। इसी प्रकार एक वर्ष कट गया। एक दिन तीसरे पहर सब कामों से छुट्टी पा राबिया अपनी क्षुद्र कुटी के द्वार पर बैठ उस दूर तक फैली मरु भूमि तथा वालुकामयी पर्वत-माला की ओर देख रही थी और क्षण क्षण पर अपने वृद्ध पिता को स्मरण करके व्याकुल होती थी, उस मरुभूमि की जलती वायु उसके कोमल शरीर से निकलती हुई ठंढी साँस को उड़ाए लिए जाती थी। इसी बीच एक दुर्बल और क्षीण वृद्ध उसके सामने दौड़ता हुआ आया और पछाड़ खाके गिर पड़ा। धीमे तथा रुँधे हुए कंठ से उसने इतना कहा "राबिया हम बद्दुओं की छावनी से भाग आए हैं; बड़ी प्यास लगी है, थोड़ा पानी दो।"

राबिया ने पहचान लिया कि उसके पिता हैं। उस समय राबिया के झोपड़े में ज़रा भी पानी न था। वह अपने घर में बहुत कम रहती थी इसी से

* कितने ही लोगों का मत है कि यह चतुर्थ सन्तान थी। अरबी में "रबा" धातु का अर्थ ही चौथी सन्तान है।

† Ibn Khalikan's Biographical Dictionary.

इतनी दूर से दुर्लभ जल लाकर रखने की वह विशेष आवश्यकता भी न देखती थी। प्यासे पिता के मुख से, "थोड़ा पानी दे" सुनने के साथ ही वह हाथ में बर्तन लेकर तुरन्त झरने की ओर चल पड़ी। बड़ी तेजी के साथ आने जाने पर भी उसे लैाटने में आध घंटे से भी अधिक लग गया। जब पानी लाकर वह पिता के देने चली तब उसने देखा कि उनका प्राणपखेरू उनके जीर्ण शरीर को छोड़ उड़ गया है। जिस स्नेहमय पिता के दर्शनों के लिए वह इतने दिनों से बराबर छटपटाया करती थी उसी को अपने सामने प्यास से प्राण त्याग करते देख राबिया के हृदय में भारी वेदना हुई। जिस पिता ने मातृ-विहीना कन्या को कितने आदर और लाड़प्यार के साथ और कितने शारीरिक कष्ट भोग कर पाला था, उस स्नेहाधार पिता की एक दिन भी सेवा शुश्रूषा करने का अवसर न पाने के कारण राबिया अतिशय मर्म्माहत हुई। राबिया ने पिता का धूलिधूसरित मस्तक उठा कर अपनी गोद में रख लिया और ठंढे पानी से उस सूखे स्तब्ध होंठ में, नेत्र में, छाती में, शरीर में पानी का छींटा देने लगी। पिता मुँह से अपना कुछ हाल भी न कहने पाए, राबिया यही सब बार बार कह कर अपने पिता के मृत-शरीर पर हाथ रख कर रोती थी। उसके सूखे हुए चेहरे पर कितने ही उपवास और प्यास की असह्य यन्त्रणा भोगने के चिह्न स्पष्ट झलक रहे थे, कितने ही दिनों तक रात में जागते रहने के कारण उसकी आँखों के नीचे कालिमा छा रही थी; कितने ही निष्ठुर चाबुकों की मार से खाल उपटी हुई दिखाई देती थी। बूढ़े गुलाम (इस्माइल) का दाम थोड़ा लगने के कारण डाकुओं ने उसे बेचा नहीं था, अपनी ही गुलामी में रक्खा था। आज बूढ़े ने किसी दाँव घात से छुटकारा पाया था। राबिया को अन्तिम बार देखने दिखाने की लालसा से आज इस मुक्ति के दिन, उसकी चिरमुक्ति हुई। यही सब सोच सोच कर राबिया का मन भीतर ही भीतर मसोस रहा था। मैंने एक चुल्लू पानी घर में क्यों न रख छोड़ा; मेरे ही कारण पिता की इस प्रकार मृत्यु हुई, ऐसे ही ऐसे विचार उसे संतप्त कर रहे थे।

जब ग्रामवासियों ने बूढ़े की मृत्यु का संवाद पाया तब वे उसका अंतिम संस्कार करने के लिये उपस्थित हुए। उस समय भी उन लोगों ने देखा कि राबिया मृत पिता के शरीर को अपने गरम आँसुओं से चुपचाप सींच रही है।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए। शोक और संताप से राबिया का जीवन पूर्ण होने लगा। राबिया ने यौवनावस्था में प्रवेश किया। वह अरब नारियों के सैान्दर्य्य से वंचित थी। वह केवल साँवली ही न थी बल्कि बड़ो कुरूपा भी थी। इसी से विवाहादि करके गृहस्थी में आने की उसे कभी स्वप्न में भी अभिलाषा न थी। उसने दृढ़ रूप से निश्चय कर लिया था कि लोगों की मेहनत मज़दूरी करके अपना पेट भरूँगी और अपने पिता की कुटी में ही अपने निरुद्देश्य जीवन को व्यतीत करूँगी। कुछ दिनों में वह सब तरह से निश्चिन्त भी हो गई।

इसी भाँति कई वर्ष बीत गये। एक दिन एकाएक "बद्दू" जाति के डाकुओं का फिर आक्रमण हुआ और वे कितने ही लोगों को पकड़ ले गये, जिसमें एक राबिया भी थी।

यद्यपि हज़रत मुहम्मद साहब के समय में यह दासत्व प्रथा दूषित ठहराई जा चुकी थी पर उस समय अरब देश के सभी स्थानों में इस प्रथा का विशेष प्रचार था। अमीर लोग ख़ूबसूरत औरतों को ख़रीद कर पत्नी रूप में या यों ही अपने भोग-विलास साधन के लिए घर में ठाट बाट से रखते थे। मजलिस आदि के अवसरों पर ये दासियाँ अपने रूप की छटा के द्वारा तथा सुन्दर नाच रङ्ग और विनीत सेवाओं से अमीरों के घर आए हुए मेह-मानों की ख़ातिरदारी और मनोरंजन करती थीं। रूप-गुणसम्पन्न दास दासियाँ बड़े बड़े नगर के बाज़ारों में अधिक मूल्य पर बिकती थीं। राबिया बसरा के बाज़ार में लाई गई और वहाँ एक शौक़ीन अमीर के

लिये वह ख़रीदी गई। राबिया को, काली और कुरूपा होने के कारण, उस धनाढ्य की विलाससामग्री नहीं होना पड़ा, उसके भाग्य से उसे मेहनत का काम सौंपा गया था। उसे मालिक के आनन्दभवन में खिलाने पिलाने, बिस्तर बिछाने आदि का काम करना पड़ता था, इससे विलास की भली बुरी सभी लीलाएं उसे नित्य देखनी पड़तीं। स्वामी के भोग-विलास में उसे सहायता करनी पड़ती थी।

उस समय और भी एक प्रथा थी—धनिकों के यहाँ विद्वानों का समागम हुआ करता था। मध्य-युग में जिस भाँति फ़्रांस में प्रसिद्ध प्रसिद्ध वेश्याओं के यहाँ विद्वानों का सम्मेलन होना एक रवाज सा हो गया था, उसी प्रकार अरब के धनिकों के यहाँ भी विद्वानों का सम्मेलन हुआ करता था।

अमीर लोग प्रसिद्ध विद्वानों का परिचय पाने के लिए अनेक विद्वानों को रात्रिभोज में निमंत्रित करके प्रशंसाभाजन होते थे। राबिया के मालिक के घर इस प्रकार का समागम प्रायः हुआ करता था। इसी से राबिया को भी हद से ज्यादा परिश्रम करना पड़ता था। इसी अधिक परिश्रम के कारण कितने ही दास दासियाँ अस्वस्थ शरीर होकर प्रति वर्ष मृत्यु के मुख में जाया करती थीं; और फिर कितने ही नए अभागे उन लोगों के स्थान को पूरा करने के लिये आ जाते थे। थोड़ी सी भी चूक होने पर चाबुक और गालियों से बिचारों की ख़बर ली जाती थी। राबिया बाल्यावस्था से ही काम काज करने में बहुत होशियार और मेहनती थी इससे उसकी तन्दुरुस्ती में कुछ फ़र्क न आने पाया और उसे गाली गुफ़्ता भी बहुत कम सुनने की नौबत आती थी। आमोद में अधिक मद्यपान करके गृह-स्वामी और उसके आगन्तुक मेहमान लोग जब अचेत हो जाते, तब दास दासियों को भी विश्राम करने का समय मिलता था। मालिक के बचे हुए मद्य मांस प्रसाद स्वरूप पाकर दास दासियाँ बड़ी आनन्दित होतीं और भोजनोपरान्त सारे दिन की थकावट दूर करतीं। पर साध्वी राबिया उन लोगों के आमोद में साथ न देती। वह गम्भीरहृदया स्त्री अवकाश पाने पर चुपचाप अपनी कोठरी में चली जाती। इसी से दूसरे नौकर चाकर उससे प्रसन्न न रहते थे। पर उसके धैर्य और गम्भीर चरित्र को देख किसी के मन में उसकी बुराई करने की इच्छा नहीं होती थी।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत जाने पर, एक दिन सदा की भाँति अनेक प्रसिद्ध कवि, दार्शनिक, ज्यौतिषी, चिकित्सक आदि निमंत्रित हो कर राबिया के आश्रयदाता के यहाँ आए थे। परस्पर पंडितों में एक दूसरे के साथ तर्क वितर्क हो रहा था। सभी अपने संचित विद्याभांडार को खोल मानो कल्पतरु बने बैठे थे। पर गृहस्वामी सांख्यकारों की भाँति निष्क्रिय भाव से शराब के नशे में चूर हो रहे थे। जिसके लिए सब विषयों की आलोचनाएं हो रही थीं वही उनकी ओर से उदासीन भाव धारण किए बैठा था। राबिया एक एक करके खाने की चीज़ें सामने रखती जाती थी; शराब की बोतल पर बोतल खाली हो रही थी। इतने में एक अतिथि महाशय एक हड्डी के टुकड़े का मांस चूसते हुए बोले "वाह, यह गाँठ कैसी ज़ायक़ेदार है! क्या इन्सान के बदन में भी ऐसी नली होगी"। उसी समय एक हकीम साहब बोल उठे "हाँ, इन्सान के बदन में भी ठीक इसी तरह की नलियाँ हैं। चौपाये और दोपाये (मनुष्य) के चलने फिरने की रीति भिन्न है, इसलिए दोनों में कुछ भिन्नता है"। पूर्व व्यक्ति ने कहा, "मनुष्य के साथ चौपाये की इस पैर की नली को मिलाकर देखने की इच्छा होती है।" यह बात मदमत्त गृह स्वामी के कानों में जा पड़ी। उसी अशुभ या शुभ अवसर में राबिया एक थाल में अनेक प्रकार का आहार सजा कर लाई। उसे देख कर गृहस्वामी ने कहा, "यह कौन सी कठिन बात है? इसी दाई का पैर काट कर न देख लिया जाय"। इतना कहने के साथ ही कई आदमियों ने राबिया को जोर से धर दाबा और हकीम साहब ने उसी समय एक तेज

चाकू निकाल जंघे का एक पर्त काट कर वहाँ की हड्डी निकाल बाहर की। राबिया ने ज़रा भी चूँ न की, उसकी मूर्ति उसी भाँति गम्भीर, अचल, और अटल बनी रही। मनुष्य के पैरों का जोड़ देख कर एक मनुष्य ने कहा, "वाह भगवान् की कैसी विचित्र लीला है।" इस असीम पीड़ा के समय में सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर का नाम याद आया। चिकित्सक ने सब हड्डियों को एक २ करके बैठाया और कुछ औषध आदि लगा कर पट्टी बाँध दी। नौकरों ने उसे ले जाकर उसकी कोठरी में सुला दिया। राबिया का सारा जीवन दुःख ही में बीता था पर यह शारीरिक वेदना उसे अत्यंत असह्य जान पड़ी। जीवन में अनेक प्रकार के दुःख झेलते झेलते वह कठोर हो गई थी पर उसके हृदय में ईश्वर के प्रति जो अटल विश्वास था उसका प्रकाश दूर नहीं हुआ। आज इस असीम यन्त्रणा के समय, जिस मधुर नाम ने राबिया के कानों में अमृत ढाल दिया था, वह उसके जीवन में व्यर्थ नहीं होने पाया। राबिया ने बड़े यत्न से उस नाम को इस पवित्र महामंत्र से आवाहन कर—

"मन मन्दिर महँ थापि कै, तव मूरति सहप्रेम।
भक्ति-पुष्प, दृगजल अरपि, पुजिहौं चरण सनेम॥"
—लाला भगवानदीन।

निज मनोमन्दिर में सादर प्रतिष्ठित किया। राबिया की पहिली उपासना "शुक्र ख़ुदा" (ईश्वर का धन्यवाद) हुई।

इसके उपरान्त राबिया ने कहा, "आज दुःख देकर भगवान् ने सचेत कर दिया। इतने दिनों तक हमें कितने सुखों में रक्खा था। हे भगवन् आज शरीर के एक भाग को काट कर आपने समझा दिया, कि आप कितने यत्न से हमारी रक्षा करते हैं। हमारे लिए आपको कितना परिश्रम और कष्ट उठाना पड़ता है सो मैं सोचने में असमर्थ हूँ। इस कृतज्ञता के बोझ से तथा मारे लज्जा के मेरा माथा नीचा हो रहा है। फिर, प्रभो! प्रार्थना करने में कौन सी लज्जा की बात होगी?" राबिया का जो निष्काम प्रेम प्रच्छन्न कलिका की भाँति था वह एकाएक प्रस्फुटित हो उठा और दिनों दिन बढ़ने लगा। महीने भर से ऊपर उसे अकेली चारपाई पर पड़े हो गए। नौकर लोग बीच बीच में आके उसे कुछ खाने पीने को देकर देख जाया करते थे। उस समय निरन्तर ईश्वरसान्निध्य अनुभव करने के कारण साध्वी राबिया बहुत ही सुखी रहा करती थी। कुछ दिनों में आरोग्य होने पर राबिया फिर अपने स्वामी के यहाँ पूर्ववत् काम करने लगी। यद्यपि वह ऊपरी मनसे सांसारिक कार्य किया करती थी, पर उसका हृदय निरंतर भगवान् की उपासना में ही निमग्न रहता था। वह ईश्वर के प्रति निस्वार्थ प्रेम करके अतिशय तृप्त हुई। यदि उसने कभी प्रार्थना में किसी प्रकार की याचना प्रगट की तो वह दूसरों के लिए, न कि अपने लिए। वह कहा करती थी "जब जब दुःख पाती हूँ तब तब रोती हूँ, पर अपने हेतु नहीं। सोचती हूँ कि इसी प्रकार की यातना कितने ही लोग भुगत रहे हैं। हाय, कब अपने सब दुःखों को हमें सौंप के लोग प्रसन्न मुख से आपके शुभ नाम का गान करेंगे? समग्र शरीर का रक्त देने पर भी, यदि इस तापित मरु भूमि में एक मनुष्य के खड़े होने का स्थान शीतल हो तो मेरे ही रक्त से यह पृथ्वी तराबोर कर दी जाय। प्रभो! हमें ऐसा बनाओ जिसमें हम मर्मान्तक असह्य दुःखों को अपने हृदय में गोपन करके इस हा-हतोस्मि-पूर्ण संसार को सुखी कर सकें। जिस पर्वत में दाहिका शक्ति विद्यमान है उसमें क्या श्याम छाया या श्याम शोभा नहीं फैलती? जिस दिन हमारी तीव्र वेदना हमारे हृदय को चीर के निकलेगी, उसी दिन मानो तुम्हारे उत्सङ्ग से वही तीव्र उच्छ्वास बाहर होगा। यही यदि हो, तब, भी हाय, संसार यदि तप्त हो?" इसके उपरान्त राबिया को कभी किसी ने उदासीन भाव में नहीं पाया। वह समस्त दुःखों को ईश्वरप्रदत्त प्रसाद जानके झेलने में समर्थ हुई थी। वह कहती है, "प्रभो, तुम हमारे दुःखों को क्या समझोगे? तुमने

जबसे हमारी ओर दृष्टिपात किया है, तब से मेरे हृदय में सैकड़ों आनन्द प्रस्फुटित हो रहे हैं। सूर्य्य ने कभी कमलिनी का उदासीन मुख भी देखा है? निज प्रेमास्पद का मुख देखने पर दुःख कहाँ रहता है?"

इसी भाँति उसका दिन कटने लगा। एक दिन उसके स्वामी के यहाँ निमंत्रित मित्रगण न आए, गृहस्वामी महाशय बैठे उन लोगों की राह देख रहे हैं। आधी रात बीत गई, फिर भी वे लोग न आये। उन्होंने भी अब तक खाने पीने की कौन कहे मद्य पानादि भी नहीं किया है, सब सामान ज्यों का त्यों रक्खा है। रात अधिक बीत गई यह देख मालिक सब दास दासियों को बिदा कर स्वयं आनेवाले मित्रों की आशा में बैठे। सूर्योदय तक तो उन्हें अतिथियों की प्रतीक्षा करनी ही थी। अंत में मद्य की तृष्णा बहुत बेचैन करने लगी; जिससे वे घर में न रह सके। घबड़ा कर टहलते हुए धीरे धीरे बाहर चले आए। उनके जीवन में आज पहला अवसर कहा जा सकता है जब कि उन्होंने अपनी सज्ञानावस्था में मदशून्य सादी आँखों से प्रकृति का दर्शन किया है। चाँदनी में चमचमाते हुए अपार बालू के मैदान में छोहारे की घनी झाड़ियों की शोभा आज उन्होंने देखी। देखने के साथ ही एक अपूर्व भावरस से उनका चित्त आर्द्र हो गया। उन्होंने सुना कि एक मधुर ध्वनि न जाने कहाँसे आकर एक अपूर्व घोषणा फैला रही है। उस मधुर स्वर का अनुसरण करके उन्होंने नौकरों के घर में जाकर देखा कि सब नौकर तो सो रहे हैं पर राबिया जाग रही है। उसके कोमल कण्ठ से एक अपूर्व तथा अश्रुतपूर्व स्वर्गीय वीणा की झनकार निकल रही है। राबिया कहती है—

"स्वामिन्, आपको सैकड़ों धन्यवाद हैं। हे हमारे आश्रयदाता पार्थिव प्रभो! तुम्हें भी सैकड़ों धन्यवाद हैं। तुम्हारे आश्रय में रह कर जो सुख हमने पाया है, उसके हेतु तुम्हें धन्यवाद है। तुम्हारे द्वारा जो कुछ हमने क्लेश पाया है उसके लिए और भी अधिक धन्यवाद। मैंने तुम्हारी ही दया से जगदाधार जगत्पति को पहचाना है। हे जगत् के स्वामी! मैं आपके समीप और किस सुख की भिक्षा करूँ? प्रभो! आपका नाम लेकर पुकारने ही में जो अनन्त सुख पाती हूँ, इच्छा होती है हृदय चीर कर आपको दिखाऊँ। हे सखा, तुम उसे भोग नहीं सकते* इसी से हमारा प्राण रोया करता है।"

"प्रभो, संसार को क्यों दुख देते हो? इससे जगत् में तुम्हारी निन्दा होती है। तुम्हारी निन्दा मुझे असह्य है। समुद्र में जिस भाँति सब नदियाँ जाकर गिरी हैं उसी प्रकार, प्रभो, संसार के दुःख की जितनी धाराएँ हैं वे सब आकर मेरे ऊपर गिरें, मैं दुर्बल होने पर भी तुम्हारे नाम पर सब कुछ सहन करने को तैयार हूँ।"

इसके उपरान्त अपने स्वामी और दूसरे नौकर चाकरों की शुभ कामना करके तथा उनके अनजान में किए हुए पाप, दुराचार, अत्याचार आदि के लिए क्षमा की प्रार्थना करके परहितावलम्बिनी साध्वी राबिया सो गई। गृहस्वामी महाशय थक कर अपने कमरे में गये। उन्होंने जिसको इतना अधिक कष्ट दिया है उसी ने आज उनकी शुभ कामना द्वारा ईश्वर-प्रेम का अपूर्व परिचय देकर जिस नए भाव और जिस नए जीवन का सुन्दर आभास दिया है, उसे हृदयस्थ करने की वे चेष्टा करने लगे। सारी रात बीत गई। सारा दिन भी चिन्ता ही चिन्ता में निराहार कट गया। आधी रात के उपरान्त वे फिर उसी पवित्र कण्ठ स्वर से आकृष्ट हो राबिया के द्वार पर जा उपस्थित हुए। उस समय साध्वी राबिया उपासना में निमग्न हो कर कह रही थी—

"अरे किस अभागे ने, सारी रात सखा के घर के बाहर बिताया है?

अरे, तू कौन है जो उस बन्द दरवाजे पर खड़ा खड़ा तप रहा है? तेरी आँखों में क्यों जल नहीं है?

---

* निर्गुण ब्रह्म।

तेरे हृदय में क्यों अग्नि धधक रही है? अरे, दुःखार्त्त मानव तेरा हृदय जल रहा है इसीसे तेरी आँखों का जल सूख गया! अरे, प्यासे, अरे धूल में लोटनेवाले, अरे भिक्षुक तू बड़ा दुःखी है; आ, हमारे दुखिया भाई, आ, हमारे हृदय में आके बैठ; तू अपने हृदय का उत्ताप मुझे दे, मैं अपना नयनजल तुझे दूँगी। अरे, तृषित एक बार जी भर रोकर देख कि कितनी शान्ति है? क्या तू दुखी होने के कारण दुखी है, तू अपने जीवन में एक दिन भी जी भर के नहीं रोया है! आज तुझे खूब रुलाऊँगी; अगर तू रोना चाहता है तो हमारे शीतल हृदय में, छाती में आ बैठ, तेरी आँखों से आँसू बहेंगे, ख़ूब बहेंगे"।

"हे सखा, जब तक तुम इन सब पतितों का हाथ पकड़ कर न उद्धार करो, तब तक मेरा हाथ मत पकड़ना। जब तक तुम इन दुखियों का आँसू न पोंछो, तब तक हमारे आँसुओं की ओर देखना भी मत। जब तक संसार का हृदय शीतल न कर लो तब तक हमारे हृदय रूपी मरुभूमि को योंही रहने दो, उस पर तुम्हें करुणा दिखाने की आवश्यकता नहीं है।

"प्रभो, जो पतित है, क्या वह न उठेगा? जिसकी दोनों आँखें आँसुओं से भीग रही हैं, उसे क्या धैर्य न दिया जायगा? जो प्राणविहीन हो रहा है, उसे क्या नया जीवन न दिया जायगा? हमारे तो केवल तुम्हीं हो। प्रभो, उन लोगों का नाथ कौन है?

"मुझे अत्युन्नत पर्वतशिखर मत बनाना। प्रभो मुझे नीच शस्यश्यामला समतल भूमि बनाना, जिसमें भूखे, कङ्काल प्राणियों को अन्न दान कर मैं उनकी यथोचित सेवा कर सकूँ। मुझे विशाल लवणसमुद्र मत बनाना। मुझे इस दहकती पृथ्वी पर छोटा सा सोता बनाना जिसमें प्यासे को मैं जल दान कर सकूँ। वीरों की भाँति मेरे हाथों को चमकती तथा लपलपाती हुई तेज़ धार की तलवार मत बनाना। प्रभो! मुझे साधारण लाठी बना दो जिससे मैं पापी और दुर्बल प्राणियों को आधार और सहारा दे सकूँ।"

गृहस्वामी महाशय ने दूसरे दिन भी कुछ नहीं खाया पिया, सारा दिन चिन्ता ही में बिता दिया। रात को मन्त्रमुग्ध की भाँति फिर गए तो देखा कि राबिया आज भी उसी प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करने में डूबी हुई थी। वह कह रही थी—

"यदि मैं स्वर्ग पाने की इच्छा से तुम्हारा नाम लेकर पुकारती होऊँ तो वह स्वर्ग मेरे लिये हराम हो। ऐसा स्वर्ग मुझे नहीं चाहिये। यदि नरक-यातना से बचने के भय से निरन्तर जपती होऊँ तो नरक ही मेरी गति हो। प्रभो, यदि तुम स्वर्ग में हो तो मैं स्वर्ग की भिखारिन हूँ। यदि तुम नरक में हो तो मैं निरन्तर नरकवास की भिक्षा माँगती हूँ। जिस समय लोभ आकर मुझे अपने जाल में फँसाना चाहता है उस समय मैं रोने लगती हूँ। दुःख से नहीं, अपमान से। वह नहीं जानता, हमारे सखा तुम आप-रूप हो।"

दूसरे ही दिन सवेरे गृहस्वामी महाशय ने सब दास दासियों को सेवावृत्ति से छुटकारा दिया और उन्हें इनाम इत्यादि देकर बिदा किया। राबिया से कहा, "तुम्हारी निष्काम ईश्वर-भक्ति और मेरे जीवन की शुभकामना देखकर मेरे चित्त की भ्रान्ति दूर हो गई। मैंने तुम्हारी कृपा से इस जीवन में माधुर्य्य प्राप्त किया है, ईश्वरप्रेम का महत्त्व अनुभव किया है। तुम्हें मैंने मुक्त किया। तुम और क्या चाहती हो? कहो; कोई ऐसी वस्तु हमारे पास नहीं है जो तुम्हारे लिये अदेय हो"।

राबिया लज्जित हो कर कहने लगी, "प्रभो, मैं निराश्रित हूँ, आपके आश्रय में रह कर मैं बड़ी ही सुखी हूँ। अब भी मैं वही आश्रय और आपकी सेवा के अधिकार की भिक्षा माँगती हूँ। आपने जो मेरा उपकार किया है, मैं आपकी सेवा करके उसकी कृतज्ञता के दिखाने का समय पाऊँ, यही याचना है। आशा है आप मुझे अलग न करेंगे।"

उसी दिन से राबिया बसरा में स्वतन्त्र भाव से वास करने लगी। उसका प्रसिद्ध नाम "राबिया-ए-बसरी" हुआ। वह ज्ञान और पवित्रता, विनय

और निष्कामना के हेतु बहुत प्रसिद्ध हो गई। देशसेवा करने में वह अपने समय में एक ही थी। कहा जाता है कि उसने अपने कठिन परिश्रम की कमाई से बग़दाद से मदीने तक एक नहर खुदवाई थी। उसकी निरन्तर उपासना में अद्भुत बात थी।

वह विख्यात मुसलमान साधक "सारशक्ति*"(?) की समसामयिक थी। ८०१ ई० में उसकी मृत्यु हुई†। 'इब्न-अल-जओजी' ने निज लिखित "शजर उल अफ़द" ग्रन्थ में ७५२-५३ ई० में उसकी मृत्यु‡ होना लिखा है। उसने अपने "सफ़ात उल-सफ़ात" नाम के ग्रन्थ में राबिया के सम्बन्ध में एक प्रबन्ध भी लिखा है जिसका कुछ अंश उद्धृत किया जाता है।

"आब्दा नाम की राबिया की एक दासी और भगवान् की परिचारिका थी। राबिया के सम्बन्ध में वह कहती है,—"राबिया सारी रात उपासना में बिताकर संध्या समय तक उसी उपासनामन्दिर में ही सो जाया करती थी। आँखों तक दीप का प्रकाश पहुँचते ही वह चारपाई से घबड़ा कर कहने लगती, "अरे जीव? कब तक तू निद्रा में अचेत पड़ा रहेगा? कब तेरी मोह निद्रा टूटेगी? शीघ्र ही तेरी निद्रा का समय आ रहा है। प्रलय के विचार के दिन (कयामत) तक तू स्वच्छन्दता से सोवेगा। अब कुछ चैतन्य हो जा"। अपनी मृत्यु निकट जान एक दिन उसने आब्दा को बुला कर कहा, "आब्दा! मेरी मृत्यु का हाल किसी से मत कहना; मृत्यु के उपरान्त इस बुरक़े से मेरे शरीर को ढाँप देना।" वह बुरक़ा पशम का बना था, वह उसी को ओढ़ कर सबके सो जाने पर एकान्त में बैठकर ईश्वर का आराधन करती थी। मृत्यु के एक वर्ष उपरान्त आब्दा ने राबिया को स्वप्न में देखा कि वह ख़ूब चमकते हुए साटन के वस्त्र से सुशोभित हो रही है; उज्वलता, चिकनाई तथा कोमलता में उस साटन के ऐसा कोई कपड़ा आब्दा ने पृथ्वी में कभी नहीं देखा था। आब्दा ने उसका कुशल पूछ कर आबू कल्लाव (?) की कन्या ज़ुबेदा का कुशलसम्वाद पूछा। राबिया ने उत्तर दिया—"उसका सुख और आराम बयान से बाहर है। अल्लाह की मेहरबानी से वह हम लोगों को लाँघ कर सब से ऊँचे स्वर्ग में जा पहुँची है"। आब्दा ने पूछा ऐसा क्यों हुआ? यहाँ इस लोक में तो आप ही लोग सब गुणों में श्रेष्ठ कही जाती थीं। राबिया ने कहा, "उन्हें भविष्यत् की चिन्ता न थी; कल, सवेरे, या संध्या को क्या होगा इस बात की उन्हें कभी चिन्ता नहीं हुई थी। इसी से उन्होंने यह श्रेष्ठ पद प्राप्त किया है*"। फिर आब्दा से कहा, "निष्काम भाव से सदैव उसका भजन करो, तुम्हारी आत्मा क़ब्र में शान्ति प्राप्त करेगी"।

राबिया के निष्कामत्व के विषय में अब्दुलक़ासिम अल् कुशायरी कहते हैं, "वह ईश्वर में चित्त का समाधान करके प्रायः कहती, "या अल्ला, जो हृदय लोभ के वशीभूत होकर तुम्हें प्यार करता है, उसे तुम आग में जला दो"।

---

* सारशक्ति एक निष्काम जनहितैषी प्रसिद्ध मुसलमान साधु थे। एक बार बग़दाद नगर में आग लगने से बहुतेरे लोगों का घर द्वार जल के खाक हो गया। एक मनुष्य ने आके उनसे कहा कि आपकी दुकान और मकान बच गया। इन्होंने कहा "शुक्र ख़ुदा" (ईश्वर को धन्यवाद है) उस समय उनमें स्वार्थ की मात्रा, परार्थ की अपेक्षा बहुत ही अधिक हो गई थी। इसी अपराध के हेतु वह तीस वर्ष तक ईश्वर के निकट अनुनय और क्षमा की प्रार्थना करते रहे।

† Beals Oriental Biographical Dictionary.

‡ मि० अमीरअली ने भी अपने "History of the Saracens" में यही लिखा है।

* श्री चैतन्य महाप्रभु का संन्यास भी इसी भाँति भविष्य-चिन्ता से रहित है। उनके सेवक गोविन्दघोष ने दूसरे दिन के हेतु कुछ साग, भाजी उठा कर रख दिया था, इसी संचयकारिणी बुद्धि होने के कारण महाप्रभु ने उन्हें फिर गृहस्थ आश्रम में लौटा दिया था।

एक दिन "सूफ़िया-अस-सौरी" ने राबिया के सामने कह डाला "आह, हमें कितना भारी दुःख है।" राबिया ने उनसे कहा "झूठ मत बोलो। बल्कि कहो हमें बहुत कम दुःख है। यदि सचमुच तुम दुःखित होते तो तुम ठंडी साँस लेने से शान्ति न पाते।"

राबिया प्रायः कहा करती थी कि "मेरे कार्य्य संसार में प्रचारित तथा प्रशंसित हों; मैं इसे तुच्छ समझती हूँ।" वह सबको यही उपदेश दिया करती "जैसे तुम पाप को गुप्त रखते हो वैसे ही सत्कार्य्य को भी प्रगट मत होने दो"।

राबिया सदैव, सब स्थानों में ईश्वर से साक्षात् करती थी। एक बार बसरा के राजमार्ग में उसने देखा कि एक युवक एक बुरक़ेवाली स्त्री के पीछे लोलुप चित्त घबड़ाया हुआ जा रहा है। उन्होंने उससे ऐसा घृणित कार्य्य करने का कारण पूछा। मालूम हुआ कि, वह मनुष्य सुन्दरता को पूर्ण रूप से भोगने के लिए तरस रहा है। तब राबिया ने उससे कहा "जिसने बहुत ही सुन्दर, फूल-फल पल्लवादि से अपने को छिपा रक्खा है उसके घूघुट के खोलने की इच्छा तुम्हें क्यों नहीं होती?" राबिया के इस मर्मभेदी वाक्य में ऐसा प्रभाव था कि वह मनुष्य अन्तिम जीवन में परम "धार्मिक" पदवी प्राप्त करके प्रसिद्ध साधक हुआ।

अवारिफ़-उल-मारिफ़ नाम के ग्रन्थ में शेख साहब-उद्दीन सोहरावरदी ने राबिया की वाणी का संग्रह किया है।

"हे प्रभु, मैंने अपने चित्त को तुम्हारे ही संसर्ग के हेतु पृथक् कर रक्खा है। यहाँ जो लोग मेरी शुभ कामना में लग रहे हैं, उन लोगों के लिये हमारा यह शरीर है। आगन्तुक दर्शक अतिथियों का साथी हमारा शरीर है। हमारा प्यारा हमारे हृदय का साथी है"। यह राबिया की उपासना के नैरन्तर्य्य का प्रमाण है।

राबिया नियमबद्ध उपासनाप्रणाली की विरोधी थी। स्वतः उत्साहित हार्दिक भाव से ईश्वर पूजा का ही उसने अवलम्बन किया था। वह उपासना के समय प्रायः प्रार्थना करती कि "प्रभु तुम्हारे लिए संसार के मायाजाल को वेध के निकल आई हूँ, अब उपासना के जाल से फिर उसमें न जा फँसूँ। वह जाल बड़ा ही पेचीला है—उससे इसमें बड़ा सुख है"। राबिया की समाधि यरुशलम के पूर्वांश में "जैबुल-एत-तर" (Mount-of-Olives) पहाड़ पर आज भी विद्यमान है। वह समाधिस्थल आजकल एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। प्रति वर्ष बहुत से भक्त वहाँ एकत्रित होते हैं। उमल ख़ैर राबिया (मङ्गल माता) आज भी बहुत से भक्तों से पूजा पाती हैं।*

—:o:—

फ़र्ग्यूसन कालेज।

(लेखक—श्रीयुत साँवलजी नागर।)

विद्वानों का सिद्धान्त है कि—मानवी समाज के धर्मतत्वों से यदि कुछ लाभ हुए हों तो उसका श्रेय इसी भारतमाता को है। संसार की यावत् धर्म-परम्परा यहीं से आरम्भ हुई। समस्त धर्म्म वेदप्रणीत धर्म की सन्तान हैं। हिन्दूधर्म से महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म निकाला। उसी बुद्ध-धर्म से क्रिस्तानी धर्म की

* यह प्रबन्ध बङ्गला मासिक पुस्तकों के सुप्रसिद्ध और सिद्धहस्त लेखक प्रवासी के सहायक सम्पादक बाबू चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय महाशय के (भारती में प्रकाशित) प्रबन्ध का अनुवाद है। इसके लिये उक्त महाशय के समीप मैं आन्तरिक भाव से कृतज्ञ हूँ। इसके अतिरिक्त हमारे परम प्रिय आत्मीय बाँकेबिहारीलालजी यदि मेरी हस्तलिखित कापी को साफ़ करने की कृपा न दिखलाते तो शायद आज इसके प्रकाशित होने का अवसर न मिलता। इसके लिये उक्त महाशय को भी साधुवाद देना न भूलूँगा। अनुवादक।

उत्पत्ति हुई। उसी को मुम्मद ने तलवार के ज़ोर से महम्मदी धर्म का रूप दिया। और उसी धर्म को 'नानक' ने पुनः सनातन धर्म में मिलाया। धर्म यदि तुम्हारा प्राण हो तो हे संसार के सब सभ्य समाजो! तुम्हें जिसने वह प्राण दिया उस हमारी भारतमाता को प्रणाम करो। वैदिक धर्म इस भूमि का प्राण है। उसके रक्षण के लिये शरीर को तुच्छ समझनेवाले श्रीमद्शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, चैतन्य, वल्लभाचार्य आदि समस्त धर्म-वीरों ने हमारी ही भूमि में जन्मग्रहण किया है। हे वीर्यशाली जापान! यदि तू और भी पचासों 'सुशीमा' की लड़ाइयाँ जीत ले तथापि वह भाग्य, जो भारत को प्राप्त है, तू नहीं प्राप्त कर सकता। क्योंकि बुद्ध भगवान् को जन्म देने का महद्भाग्य परमेश्वर ने इसी भूमि को प्रदान किया है। भारतीय धर्म्म का यह कदापि आग्रह नहीं है कि केवल अमुक मार्ग से ही ईश्वर मिल सकता है। उसके सन्तानों में से चाहे कोई विष्णु को पूजे, चाहे "अल्लाहो अकबर" कह कर पुकारे, चाहे नानक को माने, चाहे बुद्ध को धर्मदेव समझे, इस उदारचरित भारत का धर्म के सम्बन्ध में उन सन्तानों पर कुछ भी दबाव नहीं है। इस भारतीय मातृ-धर्म का मूलतत्व केवल दूसरे का उपकार करना है। इससे बढ़ कर कोई पुण्य नहीं है और दूसरों को कष्ट देना—इससे बढ़ कर पाप कर्म नहीं है।*

इसी मूल-तत्व को कार्य रूप में परिणत करने के निमित्त संसार के सपूत सार्वजनिक कार्य करते हैं और इसे सुख्याति मान तन, मन, धन व्यय कर यथा-शक्ति संसार की सेवा कर जन समुदाय का उपकार करने का प्रयत्न करते हैं। कोई स्कूल और कालेज खोलता है, कोई अस्पताल बनवाता है, कोई धर्मशाला बनवाता है तो कहीं कोई वाचनालय, कूएँ और तालाब बनवाता है। इसी तत्व को सामने रख कर यदि हम भारतवर्ष के भिन्न भिन्न नगरों की ओर दृष्टिपात करें तो हमें बम्बई प्रदेश का पूना नगर इन सबों में अग्रसर दिखाई देगा। अन्यान्य नगरों में जब कि सार्वजनिक कार्य बड़े बड़े धनिकों और अमीरों को हाथों से सम्पन्न हुए हैं, वहाँ पूना नगर में निर्धन, सुशिक्षित, विचारशील, उद्योगी एवं उत्साही व्यक्तियों द्वारा सम्पादित हुए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि दक्षिण-कालेज, दी न्यू इंग्लिश स्कूल, डेकन एजुकेशन सोसाइटी, फ़र्ग्यूसन कालेज, आनरेबल मि० गोखले की भारतसेवक समिति, प्रो०कर्वे का विधवाश्रम इत्यादि इसके उदाहरण हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष में नहीं तो पश्चिमीय भारत में इसके मुकाबले का सार्वजनिक कार्य करनेवाला एक भी नगर नहीं है।

ऊपरोक्त संस्थाओं में दक्षिण एजुकेशन सोसाइटी, दी न्यू इंग्लिश स्कूल और फ़र्ग्यूसन कालेज का एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये एक का पूरा वृत्तान्त जानने के लिये हमें तीनों के इतिहास के जानने की आवश्यकता पड़ेगी। दी न्यू इंग्लिश स्कूल और फ़र्ग्यूसन कालेज का निरीक्षण और प्रबंध डेकन एजुकेशन सोसाइटी के सपुर्द है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से 'दी न्यू इंग्लिश स्कूल' सब से पुराना है। और इसके बाद क्रम से डेकन एजुकेशन सोसाइटी और फ़र्ग्यूसन कालेज की स्थापना हुई है। अतएव फ़र्ग्यूसन कालेज का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिये पाठकों को दी न्यू इंग्लिश स्कूल के इतिहास की ओर दृष्टि फेरनी पड़ेगी।

दी न्यू इंग्लिश स्कूल।

सन् १८७९ ई० में महाराष्ट्र-कुल-तिलक श्रीमान् पं० बालगंगाधर तिलक ने एल० एलबी० की डिग्री प्राप्त की। जिस समय आप क़ानून का अभ्यास करते थे उस समय आपकी मित्रता श्रीयुत गोपाल गणेश आगरकर के साथ हुई। आप लोगों की मित्रता आज कल की भाँति कलयुगी-मित्रता नहीं थी। स्वार्थ, गर्व, द्वेष आदि का कहीं ठिकाना भी न था। वहाँ तो स्वार्थत्याग, देशसेवा, कर्तव्यपराय-

*"अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥"

णता एवं "परोपकारः पुण्याय" इत्यादि की ही मात्रा अधिक थी। "हमारे देशभाइयों का कल्याण किस प्रकार से हो सकता है"—यही विचार उनके हृदय-मंदिर में रात दिन घूमा करता था। अन्त में इन दोनों ने निश्चय किया कि सरकारी नौकरी न करनी चाहिए, वरन् स्वतंत्र पाठशाला आदि स्थापित कर देश के भाइयों को उत्तमोत्तम शिक्षा प्रदान करने की देश की नौकरी करनी चाहिए। आप लोगों का विचार था कि लाख रुपये मासिक वेतन भी स्वतंत्रता रूपी अमृतफल के बराबर नहीं है। बाबू राधाकृष्णदास ने ठीक लिखा है—

"पराधीन ह्वै कौन चहै जीवों जग माहिँ।
को पहिरै दासत्व-शृङ्खला निज पग माँहि॥
इक दिन की दासता अहै शतकोटि नरक सम।
पल भर को स्वाधीनपना स्वर्गहुँ तै उत्तम॥"

हमारे पाठकों को पं० विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूनकर का नाम भली भाँति ज्ञात होगा। गुजराती भाषा में जो पद श्रीगोवर्धनराम त्रिपाठी को, बंगला भाषा में जो पद श्रीयुत बंकिमचन्द्र जी को, अँग्रेजी भाषा में जो पद शेक्सपियर को, तथा हिन्दी भाषा में जो पद श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को प्राप्त है—वही स्थान चिपलूनकर महाशय को मराठी भाषा में प्राप्त था। पहिले आप सरकारी नौकर थे, परन्तु कुछ समय के बाद आपने राज-कर्मचारियों से मतभेद हो जाने के कारण अपनी नौकरी छोड़ दी और एक स्वतंत्र स्कूल स्थापित करने के विचार से आप पूना आए। जब उनका समाचार श्रीयुत तिलक और पं० आगरकरजी को विदित हुआ तो ये लोग भी पं० चिपलूनकर से मिले और एक स्वतंत्र स्कूल की स्थापना के सम्बन्ध में विचार करने लगे। इन लोगों के इस कार्य का समाचार सुनकर, एक परमोत्साही बुद्धिमान् सज्जन भी, जिनका नाम पं० एम० बी० नामजोषी था, इस महत् कार्य में योग देने के निमित्त सम्मिलित हो गये। इन लोगों ने निश्चय किया कि स्वतंत्र रूप से व्यवस्था कर स्कूल और कालेज आदि स्थापित करना चाहिये, जिसमें अल्प व्यय कर जनसमुदाय अपने बालकों को शिक्षा दे सकें और अपने बालकों को चरित्रवान्, देशभक्त एवं देशसेवक बना सकें। दूसरी बात उनके हृदय में यह भी समा गई थी कि जब जब प्रजा की सामाजिक अवस्था में परिवर्त्तन होता है तब तब शिक्षा-क्रम में भी रद्दोबदल करने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु गवर्नमेन्ट की नीति इस शिक्षा-विभाग में बहुत सुस्ती से कार्य करने की है—इस कारण नवीन ढंग से, नवीन उत्साह से एवं नवीन प्रणाली के अनुसार नवीन सार्वजनिक द्रव्य से जो कार्य किया जाता है वह सरकारी संस्थाओं की अपेक्षा विशेष माननीय समझा जाता है। यह सब सोच कर ता० २ जनवरी सन् १८८० ई० को म० तिलक, श्रीयुत चिपलूनकर तथा पं० नामजोशी महाशय ने "दी न्यू इंगिलश स्कूल" स्थापित किया। इधर एम० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो विख्यात संस्कृत-भाषा-मर्मज्ञ पं० वामन सदाशिव आपटे तथा उपर्युक्त पं० आगरकरजी एम० ए० भी इस पुण्य-कार्य में योगदान देने के लिये सम्मिलित हो गए। इन पाँचों महाराष्ट्र-पांडवों ने ऐसे उत्साह और परिश्रम से कार्यारम्भ किया था कि जिसके कारण आज दिन ये संस्थाएँ भारतरत्न हो रही हैं। इतना ही कर इन लोगों से शान्त न रहा गया, वरन् इन्होंने सुप्रसिद्ध "मराठा" एवं "केसरी" नामक दो पत्र भी प्रकाशित किए जिनके जोड़ का देशी भाषा में कोई पत्र नहीं है। अंग्रेज़ी भाषा में एक कहावत है कि "ईश्वर उनकी अवश्य सहायता करता है जो प्रयत्न करते हैं—"God helps those who help them selves." पं० विष्णुकृष्ण चिपलूनकर ने इन पत्रों के लिये "आर्य्यभूषण" नामक एक प्रेस का बन्दोबस्त किया और ये समाचारपत्र इसी प्रेस में छपने लगे।

यह एक साधारण नियम है कि अच्छे कामों में विघ्न बहुत होते हैं। परन्तु जो मनुष्य वास्तव में सज्जन होते हैं वे इन विघ्न बाधाओं से कदापि हतोत्साह नहीं होते। इस प्रकार इन उत्साहियों को भी

कितने ही संकटों का सामना करना पड़ा था। सन् १८८२ में मि० तिलक और पं० आगरकरजी को कोल्हापुर की सरकार का कोप-पात्र बनना पड़ा था। महाराज शिवाजीराव के बाल्यकाल में राज्य का कुल इन्तिज़ाम बर्वे नामक महाशय करते थे। मि० तिलक और पं० आगरकरजी ने अपने समाचारपत्र "केसरी" और "मराठा" में बर्वे महाशय की कुछ आलोचना की। बर्वे महाशय ने इन पर मानहानि का अभियोग उपस्थित किया। अभियोग चल ही रहा था कि इसी बीच में पं० चिपलूनकरजी की ३२ वर्ष की अवस्था में मृत्यु हो गई। इधर अभियोग चल रहा था उधर इनके एकमात्र सहायक की मृत्यु हो गई। कैसा विकट अवसर था, यह पाठक गण स्वयं अनुमान कर लें। इतना ही नहीं, श्रीयुत तिलक एवं पं० आगरकरजी को चार चार मास की सज़ा भी हो गई। परन्तु महाराष्ट्रवीर ज़रा भी विचलित न हुए। फल यह हुआ कि चारों ओर से सहायता मिलने लगीं और सम्पूर्ण महाराष्ट्रसमुदाय इस स्कूल के चिरस्थायी बनाने का उद्योग करने लगा। इसी साल (सन् १८८२) में "एजुकेशन कमीशन" के सभापति सर विलियम हन्टर जब अन्यान्य स्कूलों का अवलोकन करते हुए पूना आए तब इस स्कूल को भी देखने गए थे और यहाँ की कार्यप्रणाली देख ऐसे प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने Visitors Book में लिखा था कि "इस स्कूल का प्रबन्ध और कार्यप्रणाली ऐसी उत्तम है और यह स्कूल इतने ही अवसर में ऐसी उच्च अवस्था तक पहुँच गया है कि मैंने ऐसा स्कूल सम्पूर्ण भारतवर्ष में कहीं नहीं देखा।"

डेकन एजूकेशन सोसाइटी।

जिन उत्साही देशभक्तों ने निःस्वार्थ भाव से इस कार्य का आरम्भ किया था वे केवल एक हाईस्कूल खोलकर ही कैसे शान्त रह सकते थे। पं० विष्णु शास्त्री चिपलूनकरजी की असामयिक मृत्यु के बाद इस स्कूल का सम्पूर्ण कार्यभार श्रीयुत तिलक के सिर आ पड़ा। कार्य के अनुभव से उन्हें ज्ञात हुआ कि कोई ऐसा आर्ट्स कालेज स्थापित करना चाहिये जिसमें से चरित्रवान्, देशसेवक एवं राजभक्त विद्यार्थी निकला करें और जो सम्पूर्ण देश में, केवल उदर-निर्वाह योग्य वेतन ग्रहण कर, स्वतंत्र स्कूल खोल देशवासियों को विद्यादान दें तथा इन स्कूलों की देखभाल एक कमेटी के अधीन रहे जिसके सदस्य विख्यात यूरोपियन तथा देशी विद्या-प्रेमी हों। इस विषय में इनके विचार कहाँ तक परिपक्व थे यह स्कूल की १८८३ की (२री) रिपोर्ट से मालूम होता है। कार्यकर्त्ताओं ने लिखा था कि "सर्वसाधारण की शिक्षा का कार्य जिस समय हम लोगों ने आरम्भ किया हमें विश्वास था कि मानवी उन्नति के सब मार्गों में शिक्षा ही एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा गिरी हुई जाति की आर्थिक, नैतिक तथा धार्मिक उन्नति हो सकती है और उसे धीरे धीरे उच्चाति उच्च जाति की पंक्ति में परिगणित करा सकती है। इस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिये शिक्षा का प्रबन्ध देशवासियों के हाथों में होना चाहिये। *

इस विचार की पूर्ति सन् १८८४ के अक्तूबर मास में की गई। "डेकन एजुकेशन सोसाइटी" नामक एक संस्था स्थापित की गई और स्कूल का कुल कार्य इस सोसाइटी के सुपुर्द कर दिया गया। कार्यकर्त्ताओं ने अपने अधिकार छोड़ दिए और इस सोसाइटी के (लाइफ़ मेम्बर) जीवन-सभासद होकर इसकी उन्नति की चेष्टा करने लगे।

इस कार्य में अप्रतिहत सफलता प्राप्त करने की इच्छा से प्रधान कार्यकर्त्तागणों ने एक फंड

* "They had undertaken the work of popular education with the firmest conviction and belief that of all agents of human civilisation education is the only one that brings about material, moral and religious regeneration of fallen countries and raises them up to the level of most advanced nations, by slow and peaceful revolutions. And in order that it should be so, it (education) must be ultimately in the hands of the people themselves."

खोला। इसमें द्रव्य एकत्रित करने की इच्छा से महाशय नामजोषी जी महाराष्ट्रदेशी रियासतों में घूमने निकले। कोल्हापुर-केस में कार्य-कर्त्ताओं की निर्दोषता प्रमाणित हो चुकी थी। इससे नामजोषी महाशय ने थोड़े ही समय में ५२०००) रुपया एकत्रित कर लिया। सहायकों में कोल्हापुर के पोलिटिकल एजेन्ट और रीजेन्ट महाशय भी थे। बम्बई के प्रजावत्सल लाट सर जेम्स फ़र्ग्यूसन भी इस सोसाइटी के कार्य से प्रसन्न थे और स्कूल और कालेज के लिये पूना के पेशवाओं के महलों में से यथेष्ट भूमि गवर्न्मेंन्ट ने प्रदान करने का वचन दिया था।

सर जेम्स फ़र्ग्यूसन साहब बड़े ही शिक्षाप्रेमी थे। आपही की कृपा से इस स्कूल की इतनी उन्नति हुई। आपही की कृपा से स्कूल को ऊँचे क्लासों के खोलने की उस समय आज्ञा मिली थी जब कि सर विलियम वेडरबर्न ने, जो उस समय प्रबन्धकारिणी समिति के सभासद थे, सरकार से ऊंचे दरजों के खोलने की आज्ञा माँगी थी। इन्हीं सब कृपाओं के स्मरणार्थ इसका नाम "फ़र्ग्यूसन कालेज" रक्खा गया।

ता० २ जनवरी स० १८८५ को कालेज खोलने का विधान एलफ़ीनिस्टन कालेज के प्रिन्सीपल प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर वर्डज़्वर्थ के द्वारा हुआ था। ऊंचे २ क्लासों के खोलने की मंजूरी बम्बई विश्वविद्यालय से मिलती गई। यहाँ तक कि सन् १८९१ में प्रीवियस एम० ए० तक की मंजूरी प्राप्त हो गई। तबसे आज तक लगभग ७०० विद्यार्थियों को यह संस्था विद्यादान दे रही है। अल्पमूल्य पर शिक्षा देनेवाली इससे बढ़ कर दूसरी संस्था नहीं है। कालेज में पढ़नेवालों में आधे से ऊपर ऐसे हैं जो यदि यह कालेज न होता तो कदापि विद्यालाभ कर ही न सकते। आधे बालक ऐसे भी हैं जिनके घरवालों की आय ५००) से अधिक नहीं है। इस प्रकार इस सोसाइटी से कितना लाभ हम भारतवासियों को, विशेष कर पश्चिमीय प्रदेशवालों को, हुआ है और होने की सम्भावना है यह पाठकगण स्वयं समझ लें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक भारतवासी इन महात्माओं के जिन्होंने अपने भविष्य का कुछ भी ख़याल न कर इस परोपकार-मय महत्कार्य का आरम्भ किया और इसे इस उच्च श्रेणी तक पहुँचाया, सर्वदा कृतज्ञ रहेंगे। धन्य हैं वे माता पिता जिनके पवित्र घर में श्रीयुत तिलक, श्रीयुत गोखले, महाशय चिपलूनकरजी एवं श्रीमान् आगरकरजी का जन्म हुआ है। किसी ने ठीक कहा है—

"तया गवा किं क्रियते या न दोग्ध्री न गर्भिणी।
किं कृतं तेन जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः" ॥

इस सोसायटी ने अभी हाल में सतारा और पूना में और भी कई स्कूल खोले हैं। लगभग छः लाख रुपया तो इस सोसाइटी ने केवल इमारत में व्यय किया है। कालेज में एक वृहत् पुस्तकालय भी है जिसमें लगभग ७५०००) रुपयों के मूल्य की पुस्तकें हैं। कहते हैं कि वैज्ञानिकशिक्षा, अर्थात् रसायन, भूतविज्ञान, प्राणिशास्त्र वग़ैरह में यह कालेज बम्बई प्रान्त के किसी कालेज से कम नहीं है। जिस स्थान पर यह कालेज विद्यमान् है वह स्थान पूना नगर से १½ मील पर है। यह कालेज ३७ एकड़ भूमि घेरे हुए है। मनोरञ्जन का भी यहाँ अच्छा इंतज़ाम है। क्रिकेट, फुटबाल, टेनिस आदि अँग्रेज़ी एवं देशीय कसरतों के सब सामान पृथक् पृथक् स्थानों में तैयार हैं। हर एक कसरत के लिये अलग अलग भूमि बनी हुई है। इस प्रकार आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के अनुसार मनोरञ्जनीय विभाग भी यहाँ यथेष्ट है।

फ़र्ग्यूसन कालेज की जन्मदात्री तथा प्रबन्धकर्त्री "डेकन एजुकेशन सोसाइटी" है। परन्तु इस सोसाइटी के प्राण इसके आजन्मसभासद (life members) हैं। अतः इन सभासदों के विषय में यहाँ कुछ विशेष लिखना अनुचित न होगा। इस सोसाइटी की रजिस्टरी सन् १८६० के २१ वें ऐक्ट के अनुसार हो गई है। सोसाइटी में तीन प्रकार के

सभासद हैं। (१) फेलो (Fellow) (२) संरक्षक (Patron) और (३) आजन्मसभासद् (life members)। जो लोग सोसाटी के फंड में भारी रकम प्रदान करते हैं उन्हें सोसाइटी की काउन्सिल "फेलो" चुनती है। जो लोग १०००) या इससे अधिक प्रदान करते हैं वे "पेट्रन" समझे जाते हैं। और जो सज्जन निस्वार्थभाव एवं देश सेवा के ख़याल से बहुत ही अल्प वेतन पर कम से कम २० वर्ष तक इस सोसाइटी की सेवा करते हैं वे लाइफ़ मेम्बर कहे जाते हैं। सोसाइटी की काउन्सिल दो प्रकार के मेम्बरों की बनी हुई है। एक भाग में कुल लाइफ़ मेम्बरस् होते हैं और दूसरे भाग में वे फेलो और पेट्रन होते हैं जिन्हें फेलो और पेट्रन हर तीसरे वर्ष चुनते हैं। ये संख्या में लाइफ मेम्बरों के बराबर होते हैं। इसी काउन्सिल के अधीन सोसाइटी के कुल प्रबन्ध हैं।

आजन्मसभासद् का केवल शिक्षक स्वरूप से पढ़ाना ही कर्त्तव्य नहीं है वरन् ये लोग और २ तरह के भी काम करते हैं, जैसे चन्दा एकत्रित करना, व्याख्यानों द्वारा इस कालेज की महत्ता प्रगट करना; वार्षिक बजेट तैयार करना इत्यादि। इसके सिवा ये लोग निस्वार्थ रूप से कितनेही सार्वजनिक कार्य भी करते हैं, जैसे अकाल पीड़ितों की सहायता करना, स्त्री-शिक्षा का प्रचार करना, दीन-दुखी भाइयों की सहायता करना इत्यादि।

मुख्य और प्रधान आजन्म समासद

प्रधान संस्थापकों में से पं० विष्णुशास्त्री चिपलूनकरजी का इस सोसाइटी के अस्तित्व के पूर्व ही देहान्त हो चुका था। इन्हें छोड़ कर लाइफ मेम्बरों की सूची में लगभग ३४ मनुष्यों के नाम आ चुके हैं। इनमें से श्रीयुत तिलक और प्रो० पाटनकरजी सन् १८९० के अन्त में इस्तीफ़ा दे कर अलग हो गए। इनके पृथक् होने का कारण कार्यकर्त्ताओं का धर्म-संबन्धो मतभेद था। यदि श्रीयुत तिलक अड़े रहते तो सम्भव था कि दो चार दूसरे सज्जन इससे पृथक् हो जाते। इसी ख़याल से उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया था। श्रीयुत तिलक गणितशास्त्र के प्रोफ़ेसर थे। परन्तु समय २ पर वह संस्कृत और विज्ञान शास्त्र की प्रोफ़ेसरी भी करते थे। विद्यार्थियों के आप माननीय प्रेमपात्र थे।

प्रो० पाटनकरजी इस सोसाइटी से पृथक् हो कर काशी के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में चले आए थे और यहाँ सन् १९११ तक संस्कृत के प्रोफ़ेसर थे। सन् १९११ में आपने यह पद भी छोड़ दिया और अब आप इन्दौर चले गए हैं।

पं० वामन सदाशिव आपटे एम० ए० प्रथम प्रिन्सिपल थे। आप संस्कृत भाषा के अद्वितीय विद्वान् थे। आपकी बनाई "कुसुममाला" और (Apte's Guide) आपटेज़ गाइड ये दो पुस्तकें विद्यार्थियों के लिये बड़े काम की चीज़ें हैं। आप बहुत अच्छे कार्यदर्शी थे। विशेष परिश्रम के कारण आप प्रायः रोगग्रस्त रहा करते थे। एकाएक सं० १८९२ ई० की ९ वीं अगस्त को ज्वर के कारण आप पञ्चत्व को प्राप्त हुए।

श्रीमान् पं० गोपाल-गणेश-आगरकर एम० ए०, जिनका वर्णन पीछे किया जा चुका है और जो शुरू से इस कार्य के सहायक थे, इतिहास और फ़िलासफ़ी के प्रोफ़ेसर थे। आगरकर जी एक अच्छे समाजसुधारक थे। आपने मि० गोखले के साथ "सुधारक" नामक एक मराठी-अंग्रेज़ी साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया था। समाज-सुधारकों में आप अग्रगण्य थे। सन् १८९५ के जून मास में दमे के रोग से पीड़ित हो आप इस असार संसार से चल बसे।

महाशय आगरकर जी की मृत्यु के एक मास पूर्व प्रो० वासुदेव बालकृष्ण केलकर जी का देहावसान हुआ था। आप बड़े ही सीधे मनुष्य थे। अहंकार तो कहीं छू तक नहीं गया था। रहन सहन भी आपकी एक दम सादी थी। पूर्व में आप ही "केसरी" एवं" मराठा'' पत्र के सम्पादक और

प्रकाशक थे। यह कार्य आपने बड़ी योग्यता से चलाया था।

फ़र्ग्यूसन कालेज के तृतीय प्रधानाध्यापक श्रीयुत महादेव शिवराम गोल एम० ए० थे। २० वर्ष की विकट प्रतिज्ञा का पूर्ण रूप से प्रतिपालन कर आपने सन् १९०२ में विश्रान्ति ग्रहण की। आप विज्ञान के प्रोफ़ेसर थे। आपका सिद्धान्त था कि हमारी उन्नति बिना विज्ञान तथा ग्रौद्योगिक शिक्षा के नहीं हो सकती। आप एक अच्छे इंतिज़ामकार एवं तीव्र लेखक भी थे।

फ़र्ग्यूसन कालेज के प्रधानाध्यापक का पद आजकल मिस्टर आर० पी० परांजपे, सीनियर रेंग्लर, एम० ए० (केन्टब) बी० एस सी० (बंबई) सुशोभित कर रहे हैं। आपने अपनी प्रतिभा ग्रौर विद्वत्ता के द्वारा बड़े बड़े अंग्रेज़ तथा देशी विद्वानों को चकित कर दिया है। हज़ारों रुपये व्यय कर आप विलायत गए। अपूर्व परिश्रम कर इतनी विद्वत्ता प्राप्त की। परन्तु बड़ी से बड़ी सरकारी नौकरी छोड़ कर आप इस समय अपने देशवासियों की सेवा में तत्पर हैं—यह कितनी प्रशंसा तथा निःस्वार्थता की बात है। ऐसे ही सज्जनों से हमारा वास्तविक उपकार हो सकता है—इसमें कोई सन्देह नहीं।

परन्तु प्रसिद्ध देश भक्त आनरेबुल महात्मा गोपालकृष्ण गोखले बी० ए०, सी० आई० ई० ने इस सोसाइटी तथा इस कालेज की जो अद्वितीय सेवा की है उसके विषय में कुछ लिखना बहुत आवश्यकीय है। बिना इसके यह लेख अधूरा ही रह जायगा। आप सन् १८८४ में आजन्मसभासद् हुए। तब से आज तक आपने जिस उत्साह, निष्कामता एवं निस्वार्थता से इसकी सेवा की है वह अवर्णनीय है। सचमुच आप ही के उद्योग से इसकी यहाँ तक उन्नति हुई है कि सरकार अपनी रिपोर्ट में इसे सर्वोत्तम लिखती है। आप बहुत समय तक इसके प्रिन्सिपल भी थे। आपही की वक्तृत्व शक्ति तथा अविरल प्रयत्न से लाखों का चन्दा एकत्रित हुआ है। जिस काम को आपने उठाया उसे पूरा किए बिना न छोड़ा। मिस्टर एच० शार्प सी० आई० ई० ने गवर्नमेंट की ग्रोर से सं० १९०७ से सं० १९१२ तक की जो रिपोर्ट लिखी है उसके ६७ वें पृष्ठ में बम्बई का ज़िक्र आया है। आपने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "बम्बई प्रान्त में उच्च शिक्षा की व्यवस्था संकुचित है। यद्यपि विद्यार्थियों की संख्या युक्त-प्रदेश से अधिक है तथापि वहाँ केवल ११ कालेज हैं। बम्बई का एलफ़िनिस्टन कालेज ग्रौर पूना का डेकन कालेज सरकारी होते हुए भी छोटे हैं। सब से बड़ा पूना का फ़र्ग्यूसन कालेज है जो "डेकन एजुकेशन सोसाइटी के अधीन है"*। आपने सन् १९०२ में अवकाश ग्रहण किया।

फ़र्ग्यूसन कालेज का यह अल्प इतिहास है। निःस्वार्थभाव एवं देश सेवा के ख़याल से जो कार्य होता है उसमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हो सकती है इसका यह अच्छा उदाहरण है। कार्य करके फल की आशा करना—यह मनुष्य का स्वभाव है। हिन्दी-साहित्य-सेवियों की सेवा में उदाहरण प्रस्तुत कर किसी महत् कार्य की आशा करना भी स्वाभाविक है। मुझे पूरी आशा है कि प्रत्येक प्रान्त, प्रत्येक नगर एवं प्रत्येक ग्राम में हिन्दी के लिये भी ऐसा ही परिश्रम होगा। म० तिलक, महात्मा गोखले, साहित्य-रत्न चिपुलूनकर आदि का अब इससे संबंध नहीं है। परन्तु इनकी निस्वार्थता एवं देशभक्ति की यशोविजयनामाङ्कित ध्वजा फहरा रही है ग्रौर हमें सूचित करती है कि संसार में जन्म लेकर जो लोग इनके समान परोपकार का कार्य्य करते हैं उनके

* College education in Bombay is concentrated. Though the number of students exceed that in U. P., there are only eleven Colleges. The two Government Colleges—the Elphinstone College at Bombay and the Deccan College at Poona—are kept comparatively small. The largest College is the Fergusson College at Poona managed by the Deccan Education Society. "Progress of Education in India" by H. Sharp, C.I.E.

यश की ध्वजा सूर्यचन्द्र के अस्तित्व तक इसी भाँति फहराया करती है। परमात्मा हिन्दी-सेवियों में भी इस प्रकार की शक्ति प्रदान करे।

—:०:—

वक्तृत्त्व-शक्ति और उसकी साधना के उपाय।

(पूर्व-प्रकाशित से आगे।)

वक्ता को सब से पहले चाहिए कि वह निश्चित विषय पर अपने वक्तव्य या विचारों को पहले से ही सोच कर उनका क्रम ठीक कर ले। आरम्भ में, बिना नोट किए वक्तृता याद रखना बहुत कठिन काम है। इसी लिये प्रायः लोग अपने विचारों को किसी काग़ज़ पर नोट कर लेते हैं। लेकिन, आगे चलकर जहाँ तक हो सके बिना नोट किये ही काम चलाने का अभ्यास डालना चाहिये। यह बात कुछ कठिन तो अवश्य है; पर इससे अनेक लाभ होते हैं। प्रसिद्ध वक्ता सिसरो का कथन है, कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ कहने से पहले अपने वक्तव्य पर कुछ विचार कर लेना परम आवश्यक है। हैल्प्स साहब का मत है कि पहले वक्तृता के विषयों का क्रम ठीक कर लो और तदुपरान्त एक एक करके प्रत्येक बात पर, मन ही मन, वादविवाद करो। प्रायः लोग खड़े होते ही बे-सिलसिले और इधर उधर की बातें कहने लगते हैं जिससे सुननेवालों की तबीयत बहुत घबरा जाती है। वक्तृता की उपमा किसी सिकड़ी या जंजीर से दी जा सकती है। यदि सिकड़ी में से कहीं कोई एक कड़ी भी निकल गई तो फिर वह व्यर्थ हो जाती है,—किसी काम की नहीं रहती। ठीक यही दशा वक्तृता की भी है; जहाँ इसमें से कोई बात छूट गई, अथवा आगे पीछे हो गई, फिर उसका पूरा पूरा अभिप्राय समझ में नहीं आता और उससे सुननेवाले उकता जाते हैं।

कुछ लोग वक्तृता के पहले से इस प्रकार नोट कर लेने को बहुत अनुचित समझते हैं। लेकिन अधिकांश लोग नोट करने के ही पक्ष में हैं और उसे अधिक उत्तम समझते हैं। बहुत से अच्छे अच्छे वक्ता अपनी वक्तृता को पहले से नोट कर लेते हैं; कोई कोई तो उसे आदि से अंत तक एक या अनेक बार लिख भी डालते हैं। इस प्रकार एक या अनेक बार लिखने से सब बातें भली भाँति कण्ठाग्र हो जाती हैं। ब्रह्म-समाज के नेता और प्रसिद्ध सुवक्ता बाबू केशवचन्द्रसेन अपना भाषण सदैव लिखकर ही याद करते थे। भारत के भूतपूर्व बड़े लाट लार्ड डफरिन के एक भाषण के संबंध में कलकत्ते की दैनिक अँगरेज़ी अमृत बाज़ार पत्रिका ने एक बार लिखा था कि वह भाषण उक्त लार्ड महोदय ने एक बोर्ड पर लिख कर याद किया था।

वक्तृता कण्ठ करते समय कुछ लोग तो वक्तव्य विषय अथवा उसके मुख्य अंगों का ही विशेष ध्यान रखते हैं; पर कुछ लोग उसे अक्षरशः याद कर लेते हैं। कुछ लोगों की स्मरण शक्ति इतनी तीव्र होती है कि जिस चीज़ को वे एक बार भी पढ़ लेते हैं वह उन्हें बहुत समय तक स्मरण रहती है। ऐसे लोगों को अपना भाषण याद करने के लिये बहुत ही कम परिश्रम करना पड़ता है। मि० जान ब्राइट ने एक अवसर पर कहा था—"वक्तृता स्मरण रखने के अनेक उपाय हैं। प्रत्येक वक्ता को उनमें से, अपनी रुचि के अनुसार, कोई उपाय अपने लिये निर्धारित कर लेना चाहिये। पहले भाषण को एक बार लिखने और फिर उसे याद करने में दूना परिश्रम करना पड़ता है, जो मेरी समझ में ठीक नहीं है। इसी प्रकार विशेष अवसरों पर बिना पहले से कुछ विचार किए हुये, किसी गूढ़ विषय पर वक्तृता देना भी बुद्धिमत्ता का काम नहीं है। किसी गूढ़ विषय पर वक्तृता देने से पहले मैं सोचता हूँ कि

मुझे श्रोताओं के सामने कौन कौन सी बातें उपस्थित करनी चाहिएँ। मैं कभी अपने विचार या युक्तियाँ नहीं लिखता। हाँ, स्मरण रखने के लिये कठिन रचना के वाक्य अवश्य लिख लेता हूँ।" यह उपाय बहुत ही अच्छा है। इस प्रकार यद्यपि वक्ता को अपने विचारों के संबंध में अधिक स्वतंत्रता होती है तथापि वह बहुत से अंशों में अपने नोट किए हुए विचारों को प्रकट करने के लिये ही बद्ध होता है। यदि वक्तृता देने से पहले नोट न लिए जायँ तो वक्ता को विचारों के लिये प्रायः इधर ही उधर भटकना पड़ता है। वक्तृता लिख लेने में एक विशेष लाभ है। जो लोग अपनी वक्तृता शब्दशः लिख लेते हैं उन्हें उसमें से अनावश्यक बातों को निकाल देने और नए आवश्यक विषयों और विचारों को मिला देने का बहुत अच्छा अवसर मिलता है। लेकिन जो लोग केवल उसकी मुख्य मुख्य बातें नोट करते हैं वे कभी तो अनावश्यक बातें भी कह जाते हैं और कभी बहुत आवश्यक बातों को भी छोड़ देते या बहुत संक्षेप में कहते हैं। इनमें से जो लोग चतुर होते हैं वे तो किसी न किसी प्रकार अपना निर्वाह कर ही लेते हैं, पर जो लोग दुर्बल हृदय के होते हैं उन्हें अपने थोड़े से विचार प्रकट करने में भी बड़ी भारी कठिनता होती है।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनका काम केवल नोट करने या लिख लेने से ही नहीं चल सकता। वे लोग जिस काग़ज़ पर वक्तृता लिखते हैं उसे भी सभा-समाज में अपने साथ ही लेते जाते हैं। उसे देख कर वे लोग वक्तृता क्या देते हैं मानों गुरु को पाठ सुनाते हैं। ऐसे लोग कभी वक्ता नहीं बन सकते। वक्तृता देते समय वक्ता को उचित और आवश्यक है कि वह श्रोताओं की ओर देखे, और आवश्यकता और समय के अनुसार अपनी आवाज़ तेज या धीमी करे। जो लोग देखकर लिखा हुआ लेख पढ़ते हैं वे उसे एक ही सीधे स्वर से पढ़ते चले जाते हैं, और श्रोताओं को उससे कुछ भी आनंद नहीं मिलता। न तो ऐसी वक्तृताओं को लोग पसन्द करते हैं और न श्रोताओं पर उनका कुछ प्रभाव ही पड़ता है। जो लोग केवल लेखों पर निर्भर रहते हैं उनके विषय में एक बड़े विद्वान् का कथन है कि ऐसे लोगों के भाषण एक गँवार के भाषण से भी निकृष्ट होते हैं।

प्रायः देखने में आता है कि जब कोई व्यक्ति किसी वक्ता की बातों का खंडन करता है तब वक्ता महाशय बहुत नाराज़ होकर उसका उत्तर देने के लिये पुनः खड़े हो जाते हैं। यह उत्तर देते समय वे लोग प्रायः बहुत अधिक आवेश में आ जाते हैं और कभी कभी शिष्टता की सीमा का उल्लंघन तक कर जाते हैं; और अंत में बहुत कुछ ज़िद्द करके अपनी ही बात को सबसे ऊपर रखने का प्रयत्न करते हैं। यह बात बहुत ही अनुचित है। सबसे पहले तो यदि अपनी कोई भूल हो तो उसे तुरंत स्वीकार कर लेना चाहिये। और नहीं, तो कम से कम क्रोध कभी न करना चाहिये। यदि ऐसे आक्षेपों का उत्तर कोमल शब्दों में दिया जाय तो श्रोता भी उस वक्ता के साथ सहानुभूति प्रकट करने लगते और उसके पक्ष में हो जाते हैं।

कुछ लोग अपनी सारी योग्यता शब्दों की गढ़ंत पर ही समाप्त कर देते हैं; फल यह होता है कि उनके भाषण में अच्छे विचारों की बहुत ही त्रुटि रह जाती है। वे लोग समझते हैं कि यदि रंगीन और चटकीली भाषा में वक्तृता दी जाय तो, चाहे उसमें कुछ भी विचार न हों, पर लोग उन्हें अधिक पसन्द करते हैं। पर ऐसा समझना उनकी भारी भूल है। हम पहले ही कह चुके हैं कि वक्तृता में भाषा की अपेक्षा विचारों का सौन्दर्य्य अधिक आवश्यक होता है। हाँ, यदि अच्छे विचारों के साथ साथ भाषा भी उत्तम हो तो यह बात सर्वश्रेष्ठ है। कुछ लोग दूसरे की निंदा करना, या अच्छे वक्ताओं की भूलें दिखलाना और उनकी निंदा करना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ बैठते हैं। यह बात भी बहुत अनुचित और व्यर्थ है। इसी लिए ग्रीस का सुप्रसिद्ध विद्वान् सुकरात वक्तृता देने का बहुत

विरोधी था। वह अपने शिष्यों से कहा करता था—"जिसे जो कुछ कहना होगा वह स्वयं उसकी प्रणाली आदि का निर्णय कर लेगा।" अर्थात् उनके लिये किसी प्रकार के विशेष उद्योग की कोई आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार एक और प्रसिद्ध विद्वान् भी इस विद्या का बहुत विरोधी था। लार्ड बेकन के कथनानुसार उसका सिद्धान्त था कि वक्तृत्व-कला और पाक-विद्या में बहुत कुछ समानता है। अर्थात् जिस प्रकार पाक-विद्या की सहायता से अनेक हानिकारक भोजन बहुत स्वादिष्ट बनाए जा सकते हैं और उत्तम भोजन भी महा निकृष्ट और बेसवाद हो सकते हैं उसी प्रकार वक्तृत्व-शक्ति से अच्छे विषय बुरे और बुरे विषय अच्छे सिद्ध किए जा सकते हैं। यह बात भी बहुत से अंशों में ठीक है और उन लोगों के विशेष ध्यान देने योग्य है जिन्हें अपनी वक्तृत्व-शक्ति पर बहुत भरोसा या घमंड है।

एक और बड़े विद्वान् ने एक अवसर पर कहा था—"अच्छी वक्तृता अवश्य अच्छी है, पर विशेष अच्छी वह उसी समय समझी जायगी जब कि उसका फल भी अच्छा ही हो।" इसका तात्पर्य्य यह है कि कुछ वक्तृताओं की भाषा तो अवश्य चटकीली और भड़कदार होती है और सुनने के थोड़ी देर बाद तक श्रोताओं पर उसका थोड़ा बहुत प्रभाव भी रहता है; लेकिन उसमें विशेष तत्त्व की बातें न होने के कारण उसका कोई अच्छा फल नहीं होता। यह एक स्वाभाविक बात है कि लोग प्रत्येक विषय के फल पर विशेष ध्यान देते हैं। वक्तृता सुनने के समय मनुष्य पर जो प्रभाव पड़ता है वह क्षणिक होता है और थोड़ी ही देर बाद बिलकुल मिट जाता है। डिमास्थनीज़ एक कल्पित भाषण में सिसरो से कहता है—"तुम तो लोगों से केवल यही कहला सकते हो कि सिसरो बहुत अच्छा वक्ता है; पर मैंने उन्हें हथियार लेकर लड़ाई के लिये तैयार कर दिया।" सब से अधिक ध्यान रखने योग्य बात यह है कि जिसे अपनी वक्तृता पर स्वयं दृढ़ विश्वास नहीं होता और जो अपने भाषण को अच्छा और प्रभावशाली नहीं समझता उसके भाषण का श्रोताओं पर भी कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक बार एक मनुष्य ने सिसरो के सामने यह अभियोग उपस्थित किया था कि अमुक व्यक्ति ने मुझे विष दे दिया था। लेकिन अभियोगसंबंधी बातें कहते समय वह मनुष्य कई बार हँसा था और केवल इसी लिये सिसरो ने उसके अभियोग को मिथ्या ठहरा दिया था।

रिचर्ड शेल को लोग बहुत अच्छा वक्ता समझते थे। रिचर्ड के भाषण में किसी प्रकार का सौंदर्य्य नहीं था; उलटे उसकी प्रणाली बहुत ही बेढंगी थी। लेकिन उसकी उक्तियाँ बहुत ही सत्यतापूर्ण होती थीं, इसलिये सभी छोटों बड़ों पर उसकी बातों का समान रूप से प्रभाव पड़ता था। उसके श्रोताओं में एक आदमी भी ऐसा नहीं निकलता था जिसकी उसके साथ सहानुभूति न होती हो। इन सब बातों का तात्पर्य्य यह है कि चटकीली या भड़कदार वक्तृता की अपेक्षा सच्ची और गूढ़ बातों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है और ऐसी ही वक्तृता सर्वप्रिय भी होती है।

कुछ लोग वक्तृता में ऐसे वाक्यों का प्रयोग करते हैं जो केवल लिखने में ही भले मालूम हो सकते हैं, बोलने में नहीं। बोलने में केवल ऐसे ही वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए जो रोज़ की बोल चाल में आते हैं। व्यर्थ की बातों या विषयांतर हो जाने से भी वक्तृता का सौंदर्य्य जाता रहता है। कुछ लोग छोटी और अनावश्यक बातों के लिए भी बड़ी और महत्त्वपूर्ण बातें छोड़ बैठते हैं। पर वास्तव में वही वक्तृता सब से अच्छी समझी जाती है जिसमें काम की बातें अधिक और शब्द कम हों। वक्तृता के आरंभ में बहुत लंबी चौड़ी भूमिका भी शोभा नहीं देती। बहुत लंबा भाषण, चाहे वह अच्छा भी हो, सर्वप्रिय नहीं होता। ऐसी वक्तृता से श्रोता घबरा जाते हैं।

वक्ता जिस समय भाषण करने के लिये प्लेट-फ़ार्म पर खड़ा हो उस समय उसे अपने श्रोताओं की अवस्था का भी बहुत कुछ ध्यान रखना चाहिए। सदा श्रोताओं की ओर मुँह करके वक्तृता देनी चाहिए। भाषण के समय ऐसे भाव दिखलाने चाहिएं जिनसे लोगों के हृदय में किसी प्रकार की ग्लानि उत्पन्न न हो। यह दोष नए वक्ताओं में ही नहीं, बल्कि कभी कभी बहुत बड़े और पुराने वक्ताओं में भी पाया जाता है। वक्तृता देते समय साथ ही साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारी बातों का श्रोताओं पर क्या प्रभाव पड़ता है अथवा उनके विचारों में कैसे कैसे परिवर्त्तन हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि श्रोता लोग किस ढंग की वक्तृता अधिक पसन्द करते हैं या कैसी बातें उनकी रुचि के अनुकूल होती हैं। यदि किसी अवसर पर श्रोताओं के घबराने के लक्षण दिखाई दें तो उसी समय यदि संभव हो तो अपना रुख पलट देना चाहिए और नहीं तो तुरंत भाषण समाप्त कर देना चाहिए। क्योंकि श्रोताओं को ऐसे अवसरों पर समय काटना भी बहुत कठिन हो जाता है। कुछ लोग वक्तृता देते समय जब अपने सम्बन्ध की कोई बात सोचने लगते हैं, तो बहुत घबरा जाते हैं। ऐसी अवस्था में किसी प्रकार की सफलता बिलकुल असम्भव हो जाती है। वक्तृता देते समय कम से कम इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि हमारी बातों का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ेगा। प्रोफ़ेसर ब्लेकी ने अपनी सेल्फ़ कलचर (Self-Culture) नामक पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है— "सर्वसाधारण में वक्तृता देनेवाले लोगों को इस बात का ध्यान रखना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए कि जो कुछ वे कहते हैं वह केवल श्रोताओं पर प्रभाव डालने के अभिप्राय से ही कहते हैं। लेकिन साथ ही इस कर्त्तव्य का इतना अधिक ध्यान भी न हो कि वह चिंता-रूप में परिणत हो जाय।"

वक्ता की आवाज़ सदा साफ़ और ऊँची होनी चाहिए। आवाज़ इतनी ऊँची अवश्य हो कि कम से कम पास के किसी दूसरे कमरे के लोग सुन सकें। कुछ लोग इस ढंग से चिल्ला कर बोलते हैं कि उनकी बातें लोगों की समझ में भी नहीं आतीं; और कुछ लोग इतने धीरे से गुनगुनाते हैं कि पास बैठे हुए लोगों को भी सुनने में कठिनता होती है। आवाज़ साफ़ और साधारण होनी चाहिए,—न बहुत ऊँची हो और न बहुत नीची। वक्तृता देते समय सुर अलापने की कोई आवश्यकता नहीं। हाँ, भाषण के आरंभ में आवाज कुछ नीची होनी चाहिए और ज्यों ज्यों लोगों पर उस का प्रभाव पड़ता जाय त्यों त्यों आवाज भी ऊँची होती जाय। सर सदा सामने की ओर और उठा हुआ होना चाहिए और आवाज में किसी प्रकार की रुकावट नहीं होनी चाहिए। सम्बोधन, दुःख, आश्चर्य्य, प्रेम, दया आदि भावों के वर्णन की आवश्यकता पड़ने पर आवश्यकतानुसार यथोचित रीति से आवाज ऊँची या नीची होनी चाहिए। ग्रीस के एक अच्छे वक्ता की प्रशंसा में किसी ने लिखा है—"उसकी प्रभावशालिनी वक्तृता के समय केवल उसकी जबान ही नहीं बोलती थी बल्कि उसका अंग प्रत्यंग जबान बन कर बोलने लग जाता था"। और वास्तव में अच्छे वक्ता का चिह्न भी यही है।

वक्तृता संबंधी विषयों में से अधिकांश का साधारण वर्णन हो चुका। यद्यपि इस लेख में सभी बातों का सविस्तर वर्णन नहीं आ सका है तो भी प्रायः बहुत सी आवश्यक बातों का थोड़ा बहुत समावेश हो गया है। जो लोग इस विद्या के उपार्जन के इच्छुक हों, या उसके लिए किसी प्रकार की चेष्टा करते हों उन्हें इस प्राकृतिक नियम का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि सच्चे परिश्रम का फल निस्संदेह अच्छा ही होता है। यह एक साधारण नियम है कि यदि कोई विद्या प्राप्त करने के लिए अधिक परिश्रम किया जाय तो सफलता होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। वक्तृत्व-शक्ति से बड़े बड़े काम निकल सकते हैं। इसके द्वारा छोटे बड़े, धनी निर्धन सभी

बड़ी सरलता से वश में किए जा सकते हैं। इसके प्रभाव से कोई वंचित नहीं रह सकता। सभी बड़े बड़े वक्ता भी हम लोगों की तरह सांसारिक जीव ही थे; ग्रैार उन्होंने भी केवल ग्रभ्यास ग्रैार परिश्रम से ही यह विद्या प्राप्त की थी। इसमें सब से ग्रधिक ध्यान केवल इसी बात का रखना चाहिए कि इससे सत्यता कभी विलग न हो। संसार की सभी बातों का सत्यता से बहुत घनिष्ट संबंध है। जिस बात में सत्यता नहीं होती, उसका कोई मूल्य भी नहीं होता। दूसरी बात यह है कि वक्ता को कभी अपनी योग्यता का घमंड न करना चाहिए। चाहे तुम किसी विषय के कितने ही बड़े विद्वान् क्यों न हो जाग्रो, पर तो भी तुम, न्यूटन के कथनानुसार उस बालक के समान ही हो जो समुद्र के केवल किनारे किनारे घूमता है ग्रैार उसके भीतर का कुछ भी हाल नहीं जानता। ग्रीस का प्रसिद्ध विद्वान् सुकरात किसी मूर्ख से बातें करते समय भी, बड़ी ही नम्रता ग्रैार दीनता का व्यवहार करता था। यद्यपि संसार के सभी व्यवहारों में उपर्युक्त दोनों बातों की बहुत बड़ी ग्रावश्यकता होती है, पर उपस्थित विषय में तो यह बातें नितांत ग्रावश्यक हैं।

कुछ उपयोगी बातें।

कुछ समय पूर्व इंगलैंड के एक प्रसिद्ध डाकृर को वक्तृत्व-कला के संबंध में एक लेख लिखने के लिए अच्छा पारितोषिक मिला था। उस लेख में बहुत सी उपयोगी बातें हैं; इसलिए पाठकों के मनोरंजन के लिए उस लेख का सारांश यहाँ देकर, हम यह निबंध समाप्त करते हैं।—

"कुछ लोग सार्वजनिक सभाग्रों में खड़े होकर किसी प्रकार का भाषण नहीं कर सकते। यदि उन लोगों को कभी वक्तृता देने का ग्रवसर प्राप्त होता है तो उनका शरीर काँपने लगता है ग्रैार जीभ लड़खड़ाने लगती है। इस विषय पर ध्यानपूर्वक विचार करने से मालूम होगा कि इसका मुख्य कारण वक्ता का अपने ग्रापपर ग्रविश्वास ग्रैार उसपर श्रोताग्रों का ग्रातंक ही है। यों तो सभी स्थिति ग्रैार सभी ग्रवस्थाग्रों में लोगों में यह दोष पाया जाता है; पर युवा ग्रवस्था में इसकी बहुत ग्रधिकता होती है, प्रौढ़ावस्था में यह दोष कुछ कम हो जाता है तथा वृद्धावस्था में यह बिलकुल ही जाता रहता है। यदि यह रोग स्त्रियों को हो तो उसका उपाय शीघ्र ग्रैार सरल होता है, लेकिन यदि पुरुषों में हो तो वह बहुत कष्ट-साध्य होता है। लेकिन इतना ग्रवश्य है कि एक बार मनुष्य जब इस रोग से मुक्त हो जाता है, तो फिर उसे कभी ग्राजन्म यह रोग नहीं होता।

इस रोग के तीन मुख्य कारण हुग्रा करते हैं, जो शरीर, मन ग्रैार शिक्षा से संबंध रखते हैं। शारीरिक कारण तो वही होते हैं जो शरीर को निर्बल कर देते हैं ग्रैार मनुष्य को भली भाँति सशक्त नहीं होने देते। शारीरिक दुर्बलता की उत्पत्ति प्रायः ग्रधिक भोजन करने से ही होती है। ग्रधिक भोजन करने से पाचन शक्ति नष्ट हो जाती है जिसका सारे शरीर पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिये, जो लोग उचित परिमाण से ग्रधिक भोजन करते हैं उनमें ग्रपने ग्रावश्यक कर्त्तव्यों को पूरा करने की बहुत ही कम शक्ति रह जाती है। फलाहार करने से ग्रन्य शारीरिक शक्तियों के साथ साथ पाचन शक्ति भी खूब बढ़ती है। इसलिये जो लोग फलाहारी या शाकाहारी होते हैं वे मांसाहारियों की ग्रपेक्षा वक्तृता देने के ग्रधिक योग्य होते हैं। मद्य पीने या ग्रन्य मादक द्रव्यों का व्यवहार करने से भी लज्जा, संकोच या झझक की उत्पत्ति ग्रैार वृद्धि होती है। चाय ग्रादि से भी शरीर में जो प्रसन्नता या फुरती उत्पन्न होती है, वह क्षणिक हो होती है; इसके ग्रतिरिक्त उनका ग्रंतिम परिणाम भी ठीक नहीं होता; क्योंकि उनसे ग्रनेक हानियाँ होती हैं। यद्यपि चाय या कहवा पीने से लज्जा या संकोच की उत्पत्ति नहीं होती, तथापि ये चीज़ें शरीर को निर्बल ग्रवश्य कर देती

हैं, और फिर उस निर्बलता से लज्जा या संकोच की उत्पत्ति होती है। अथवा दूसरे शब्दों में ये चीज़ें मनुष्य को लज्जा या संकोच को दबाने के योग्य नहीं रखतीं।

जिन चीज़ों में एलकोहल (Alcohol) का मेल होता है, उनसे दूसरी हानि यह होती है कि मस्तिष्क के सब अंग खराब हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि मनुष्य में थोड़ी सी धृष्टता आ जाती है। यद्यपि लज्जा को रोकने में धृष्टता बहुत से अंशों में उपयोगी होती है, लेकिन एलकोहल के प्रभाव से उत्पन्न धृष्टता मनुष्य में उसी समय तक रहती है, जब तक कि उसपर एलकोहल का प्रभाव रहता है। और ज्योंही उसके प्रभाव का अंत होता है त्योंही मनुष्य की दशा, पहले की अपेक्षा और भी अधिक खराब हो जाती है। एलकोहल का व्यवहार मनुष्य को स्वभावतः दुर्बल बना देता है। जो लोग किसी प्रकार का व्यायाम नहीं करते, उनमें भी लज्जा या संकोच की मात्रा अधिक हो जाती है। व्यायाम न करनेवालों की शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ उतनी प्रबल नहीं होतीं; जितनी कि व्यायाम करनेवालों की हुआ करती हैं।

हमारे पाठकों में से बहुतों ने अमेरिकन-इंडियनों की वीरता की कहानियाँ अवश्य पढ़ी होंगी। इसमें संदेह नहीं कि उनकी इस वीरता का प्रधान कारण सामरिक शिक्षा है; तो भी खुले स्थान के निवास और व्यायाम आदि ने उसमें बहुत कुछ सहायता दी है। मेरा निज का अनुभव है कि व्यायाम करने से मनुष्य का संकोच कम हो जाता है और तबीयत खूब साफ़ रहती है। जब कभी मैं लेक्चर देना चाहता हूँ, तो उससे पहले पाँच छः मील का लंबा चक्कर लगाता हूँ; और तब उसके उपरांत सीधा आकर प्लेटफार्म पर खड़ा हो जाता हूँ। व्याख्यान के आरंभ में भी मैं सबसे पहले लोगों को व्यायाम करने तथा खुली हवा में टहलने के लाभ बतलाता हूँ जिससे उन्हें इन बातों की उपयोगिता भली भाँति मालूम हो जाती है। अपने विवाह से पहले, मैंने अपनी वर्त्तमान स्त्री से कई बार विवाह की बात छेड़ने का विचार किया। लेकिन जब जब मैं उसके सामने जाता, तब तब मुझे इतना अधिक संकोच आ घेरता कि मैं उसपर अपना अभिप्राय प्रकट करने का साहस न कर सकता। मैंने कई बार उससे कुछ कहने का उद्योग किया मगर मुझे कभी सफलता नहीं हुई। अंत में एक दिन, जब कि मैं लंदन के बाहर चौदह मील का चक्कर लगा कर आया था, मैं सीधा उसके मकान पर चला गया। उस समय मुझे तनिक भी संकोच न मालूम हुआ और मैंने बेधड़क होकर बड़ी दृढ़ता से अपने हृदय की सारी बातें उसे कह सुनाईं।

ख़राब हवा में रहने से भी मनुष्य में यह दोष आ जाता है। बात यह है कि जिन लोगों की तबीयत औरों से डरती है, उन्हीं को संकोच भी हुआ करता है। दूसरी बात यह है कि जिन लोगों को सांसारिक अनुभव कम होता है उन्हीं को संकोच भी हुआ करता है। संकोच का मुख्य कारण यही है कि हम लोग अपने आपको अविद्या के अंधकार में फँसा हुआ समझते हैं। हमें भय होता है कि लोग हमारे विषय में ऐसी सम्मतियाँ स्थिर कर लेंगे जिनसे हमारी वर्त्तमान प्रतिष्ठा में बहुत कुछ भेद आ जायगा। अथवा हम डरते हैं कि लोग हमपर हँसेंगे, हमें मूर्ख या छोटा समझेंगे और हमें तुच्छ या घृणा की दृष्टि से देखेंगे। इसका कारण भी सांसारिक अनुभव का अभाव ही है। हमें अपनी योग्यता या अवस्था पर किसी प्रकार का दृढ़ विश्वास नहीं होता और इसी लिये हमें औरों से संकोच होता है।

संकोच का अंतिम कारण, जो विशेष ध्यान देने योग्य है, हमारी शिक्षा है। ऐसी दशा में जब कि हमारी शिक्षा एकान्त में होती है, अथवा किसी ऐसे स्थान में होती है जहाँ किसी का आना जाना नहीं होता, अथवा जहाँ हम और लोगों से मिलने जुलने नहीं पाते, तो बड़े होने पर हममें लज्जा या संकोच होना बिलकुल ही स्वाभाविक है। हम लोग प्रायः

रोज़ ही देखा करते हैं कि जो बालक अपने माता पिता के अतिरिक्त और किसी से नहीं मिलता, वह, जब तक उसे और बाहरी आदमियों से मिलने का अभ्यास न डाला जाय, सदा दूसरों से बहुत संकोच करता है। ठीक यही दशा नवयुवकों की है। इसलिये घर ही में बन्द रह कर सारा समय व्यतीत करना बहुतही अनुचित और हानिकारक है।

लज्जा या संकोच के चिह्नों का वर्णन करना मैं उतना आवश्यक नहीं समझता; क्योंकि प्रायः सभी लोग जानते हैं कि जिसे किसी प्रकार का संकोच होता है वह अपने स्थान से पीछे हटता है, किसी नए या अजनबी आदमी के आते ही चुप हो जाता है, कोई काम करते समय उसे दृढ़ विश्वास नहीं होता और इन्हीं सब कारणों से कोई अच्छा अवसर पाकर भी वह उसका यथोचित उपयोग नहीं कर सकता। यही कारण है कि प्रायः बहुत से योग्य और विद्वान् सदा छोटे पदों पर ही रह जाते हैं और कभी उन्नति नहीं कर सकते। नए लोगों के सामने वे कोई काम नहीं कर सकते और न कुछ बोल ही सकते हैं। जब कभी उन्हें अपने अफ़सर या किसी अजनबी से बातें करने का अवसर आता है तो वे हिचकिचाते हैं, काँपते हैं और पसीने पसीने हो जाते हैं। यदि कोई उन्हें लिखते या और कोई काम करते समय देख ले तो वे थोड़ी देर के लिये रुक जाते हैं। ऐसे लोग जब कभी कभी टहलने आदि के लिये घर से बाहर निकलते भी हैं तो उन्हें भय होता है कि लोग हमें देख रहे हैं अथवा हमारे गुण-दोष की विवेचना कर रहे हैं। यदि वे किसी को हँसते हुये देखते हैं तो वे यही समझते हैं कि लोग हमारी हँसी उड़ा रहे हैं। और यही कारण है कि वे लोग सर्वसाधारण के सामने बहुत ही कम आते हैं। जब कभी सर्वसाधारण के सामने उन्हें कोई काम करना पड़ता है, या किसी ऐसे आदमी से बात करने का अवसर मिलता है जिससे वे अकारण ही डरते हों, तो उन्हें बहुत अधिक कष्ट होता है। इसी प्रकार की और भी अनेक बातें हैं जिनसे ऐसे लोगों को कभी कभी बड़ी भारी कठिनता का सामना करना पड़ता है। वे सदा यही चाहते हैं कि हमें किसी के सामने जाना ही न पड़े और या हम इस संसार से ही अलग हो जायँ।

इस प्रकार का संकोच दूर करने के कई उपाय हैं। सबसे पहले माता पिता का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे अपने बालकों को बाहरी आदमियों से स्वतंत्रतापूर्वक मिलने जुलने की शिक्षा दें, और इस प्रकार आरम्भ से ही उन्हें ऐसा अनुभव करावें जिसकी उन्हें आगे चलकर बहुत बड़ी आवश्यकता पड़ती है। बाल्यावस्था में लड़कों को जब इस प्रकार की शिक्षा मिल जायगी तो फिर बड़े होने पर उन्हें कभी कोई कठिनता नहीं होगी। साथ ही माता पिता का यह भी कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे अपने बालकों को ऐसी दशा में रक्खें जिसमें समय समय पर और लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित होता रहे। (इस देश की अधिकांश स्त्रियाँ तो नज़र लग जाने के भय से अपने बालकों को किसी के सामने भी नहीं होने देतीं।) इसके अतिरिक्त उन्हें और लोगों के साथ बात चीत करने का ढंग भी सिखलाना चाहिये। उदाहरणार्थ—यदि किसी लड़के की जन्म-गाँठ हो तो उसे इस बात के लिये उत्साहित करना चाहिये कि वह उपस्थित सज्जनों का शिष्टतापूर्वक अभिवादन करे और उन्हें धन्यवाद दे। लड़कों को ऐसे खेलों में सम्मिलित करना चाहिये जिनमें उन्हें एक दूसरे से भली भाँति बातें करने का अच्छा अवसर मिल सके। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि लड़के लड़कियाँ परस्पर एक दूसरे के साथ स्वतंत्रतापूर्वक मिलें और बातें कर सकें। इससे उन्हें लोगों से हिलने मिलने का अभ्यास पड़ जायगा और उनका संकोच बहुत से अंशों में मिट जायगा। (इस संबंध में भारतवासियों के विचार बहुत कुछ भिन्न हैं।)

इन सब बातों के अतिरिक्त संकोच दूर करने के लिये कुछ शारीरिक उपाय भी आवश्यक हैं।

सबसे पहले भोजन की बात लीजिये। साधारणतः दिन में तीन बार भोजन करना चाहिये और प्रत्येक भोजन में कम से कम पाँच पाँच घंटों का अंतर रखना चाहिये। भोजन धीरे धीरे और ख़ूब चबा कर करना चाहिये। किसी दशा में भी आवश्यकता से अधिक भोजन नहीं करना चाहिये। भोजन का अधिकांश, रोटी, दूध और फल आदि ही हों। मांस और मछली आदि से सदैव बचना चाहिये। जिन लोगों में संकोच की मात्रा बहुत अधिक हो उन्हें कफ-कारक पदार्थ एक दम छोड़ देने चाहिएँ। यह एक प्राकृतिक नियम है कि भूख से भी लज्जा बहुत कुछ दूर हो जाती है। कभी कभी चटनी आदि चटपटी चीज़ों का भी उपयोग करना चाहिये। चाय या कहवा का कभी व्यवहार न करना चाहिये और एलकोहल मिश्रित पदार्थों से भी सदा दूर रहना चाहिए। किसी प्रकार के मादक द्रव्य का कदापि व्यवहार न करना चाहिये। साधारणतः मादक द्रव्यों का उपयोग दुर्बलता दूर करने के लिये किया जाता है; लेकिन उसका फल सदैव विपरीत ही होता है।

नित्य प्रति दो घण्टे तक नियमपूर्वक व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम चाहे किसी प्रकार का हो, सदा लाभदायक होता है। टहलना, दौड़ना, तैरना, कवायद करना, टेनिस, फुटबाल, क्रिकेट आदि खेलना सभी लाभदायक हैं। वर्षा में या और कभी किसी प्रकार भीगना न चाहिये। जो लोग दिन भर परिश्रम करते हों उन्हें प्रातःकाल व्यायाम करना चाहिए और सन्ध्या समय टहलना चाहिए। यदि सम्भव हो तो सप्ताह में एक दिन, या छुट्टी के दिन किसी गाँव या देहात में घूम आना चाहिए। जो लोग आवश्यकता से अधिक लज्जाशील हों उनके लिये बाहर घूमना बहुत लाभदायक होता है। जाड़े के दिनों में भी सोने के कमरे की खिड़कियाँ तीन चार इंच खुली रहनी चाहिएँ। सोने के समय मुँह बराबर बंद रहना चाहिए और नाक के द्वारा साँस लेना चाहिये। संकीर्ण या ऐसे स्थान में जहाँ हवा बिलकुल न हो कभी न रहना चाहिए। दुर्गन्धि और बुरी हवा से भी सदा बचना चाहिए, क्योंकि इनसे शरीर तुरंत शिथिल हो जाता है और स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती है। स्नान के समय शरीर को मोटे तैालिए या अंगोछे से ख़ूब रगड़ कर पोंछना चाहिये। सप्ताह में एक दिन गरम पानी से स्नान करना भी बहुत लाभदायक होता है। इस प्रकार शरीर का शोधन भली भाँति हो जाता है और मनुष्य की दुर्बलता बहुत से अंशों में कम हो जाती है जिससे संकोच छूट जाता है।

मानसिक दुर्बलता दूर करने का उपाय यह है कि मनुष्य सदा समाज के लोगों से मिलता जुलता रहे और अपनी योग्यता पर विश्वास रक्खे। पुस्तकें पढ़ने से भी मानसिक दुर्बलता दूर हो जाती है। वृद्धों और बड़ों की संगत में रहने से भी इस संबंध में बहुत लाभ होता है। वक्तृता देते समय जब वक्ता कुछ घबराने लगे तो उसे उचित है कि वह तुरंत किसी पास बैठे हुए वृद्ध की ओर मुँह करके अपना वक्तव्य सुनाने लगे। और इस प्रकार जब चित्त स्थिर हो जाय तब सर्वसाधारण की ओर देखना चाहिए। सबसे आवश्यक बात यह है कि मनुष्य स्वयं दृढ़ और स्थिर-चित्त रहे। एक बार जब मनुष्य का संकोच दूर हो जाता है तो फिर वह कभी उसका वशीभूत नहीं हो सकता।

यह समझना बड़ी भारी भूल है कि दुर्बल मनुष्य कभी कोई बड़ा या साहस का कार्य्य नहीं कर सकता। संसार के बहुत बड़े बड़े कार्य्य करनेवाले प्रायः दुर्बल ही हुए हैं; और जिन लोगों में रणक्षेत्र में अपनी वीरता से ही विजय पाई है उनमें से अधिकांश मनुष्य ऐसे ही थे जो छोटी छोटी बातों से डर जाया करते थे। लार्ड नामक एक प्रसिद्ध योद्धा ने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। पर साधारणतः वह पशुओं का बध होते नहीं देख सकते थे। बाल्यावस्था में वह अपने एक मित्र की उँगली कटते देख और दूसरी बेर युवावस्था में गली में दो मज़दूरों को लड़ते देख वह अचेत

हो गए थे। एक फ्रान्सीसी मार्शल अपने टेबुल पर अचानक नमक की एक डली गिर पड़ने के कारण मर गया था। एक और बड़े योद्धा के विषय में प्रसिद्ध है कि वह रणक्षेत्र में तो सदा सबसे आगे रहता था, पर बहुत सी स्त्रियों के सामने जाते ही वह संज्ञा-शून्य हो जाता था। यह बात भी बहुत प्रसिद्ध है कि जनरल ग्रांट को सदा इस बात का भय लगा रहता था कि कहीं उन्हें किसी सार्वजनिक सभा में कुछ बोलना न पड़े। लार्ड क्लाइव की अधीनता में, आरकट के युद्ध में लड़नेवाले सिपाहियों में से अधिकांश लंडन के जेलखानों के कैदी ही थे। पर अपने वीर सेनापति के उत्साह दिलाते ही उन सबों ने बड़ी योग्यतापूर्वक युद्ध किया था।

नेपोलियन ने कहा है—"समस्त युद्धों में एक ऐसा समय आता है जब कि बड़े बड़े वीर योद्धा भी रणभूमि छोड़ कर भागने की इच्छा करते हैं। इस दोष का कारण यह है कि उन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं होता।" अनेक उदाहरण हैं जिनमें कि बड़ी बड़ी विजय प्राप्त करनेवाली पलटनें दूसरे अवसरों पर युद्ध आरंभ होते ही भाग खड़ी हुई हैं। अनेक अवसरों पर छोटे छोटे बालकों और कोमलांगी स्त्रियों ने भी बड़ी वीरता और साहस के काम किए हैं। लगातार विपत्तियों में पड़ते रहने से मनुष्य में एक स्वाभाविक साहस उत्पन्न हो जाता है। किसी विशेष अवसर पर दूसरों को कोई कार्य्य करते देखकर भी मनुष्य में साहस आ जाता है। जिस स्थान पर अपने कर्त्तव्य या प्रेम का ध्यान रहता है वहाँ मनुष्य में बहुत शीघ्र साहस आ जाता है। साधारणतः जो स्त्रियाँ एक चूहे को देखकर भय से चिल्ला उठती हैं वे ही स्त्रियाँ अपने बालकों को बचाने के लिये जलती आग में कूद पड़ती हैं और बड़े बड़े साहसी पुरुष पास ही खड़े उनका मुँह देखते रह जाते हैं। इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि दुर्बलता स्थायी नहीं होती। बल्कि एक विद्वान् का तो यहाँ तक कथन है कि अधिक साहस का कार्य्य प्रायः दुर्बल लोग ही कर सकते हैं। इसलिये दुर्बल मनुष्य को संतुष्ट रह कर अपने आपको ऐसा वीर समझना चाहिए जिसे अभी अपनी वीरता या साहस का परिचय देने का अवसर ही नहीं मिला। "ब"

—:०:—

जम्बू-राजवंश।

(पूर्व प्रकाशित से आगे।)

पैंडा खाँ नामक एक मुसलमान विद्रोही की अध्यक्षता में मानसरोवर के निवासियों ने बहुत उत्पात करना आरंभ कर दिया था। यह उत्पात शांत करने के लिए राजा गुलाबसिंह के मंत्री जोरावरसिंह गहलोरिया अपने साथ कुछ सेना लेकर मानसरोवर गए और वहीं युद्ध में मारे गए। जब यह समाचार राजा गुलाबसिंह को मिला तो उन्होंने भी वहाँ पहुँच कर शत्रुओं को दमन किया और तदुपरांत वह स्वयं वहाँ कुछ दिन तक रहे। उसी अवसर पर जनरल पोलाक के साथ काबुल जाते समय सर हेनरी माण्टगोमरी और सर हेनरी लारेन्स ने राजा गुलाबसिंह से भेंट की और उनसे कहा कि यदि आप अँगरेज़ी सेना के साथ पेशावर चलें और उसे खैबर घाटी के पार कर दें तो अँगरेज़ सरकार आपकी बहुत अनुगृहीत होगी। इस कार्य्य से सिखों और अँगरेज़ों की मित्रता अधिक दृढ़ हो सकती थी इसलिए महाराज शेरसिंह भी इस प्रस्ताव के पक्ष में ही थे। तदनुसार गुलाबसिंह अँगरेज़ी सेना के साथ पेशावर तक गए और वहाँ वह जनरल पोलाक तथा अन्य बड़े बड़े अधिकारियों से मिले। उसी अवसर पर सरदार बुधसिंह ने वहाँ पहुँच कर अँगरेज़ी सेना का कुछ अपकार करना चाहा। जब यह बात गुलाबसिंह को मालूम हुई तब उन्होंने सब हाल सर हेनरी लारेन्स से कह दिया। अँगरेज़ अधिकारियों ने आपस में विचार करके गुलाबसिंह से कहा कि इस संबंध में आप

जैसा उचित समझें करें। इस पर गुलाबसिंह ने बुधसिंह के पक्षवाली सेना को कुछ पुरस्कार आदि देकर अपनी ओर मिला लिया और एक गुप्त सभा करके उन लोगों को भली भाँति समझा दिया कि अँगरेज़ों से शत्रुता करने में स्वयं सिक्खों की ही हानि होगी और उनके बहुत से आदमी व्यर्थ मारे जायँगे। इससे उत्तम यही है कि अँगरेज़ों के लिए खैबर की घाटी खुली छोड़ दी जाय। यदि अफ़ग़ानों की जीत हुई तो खालसा सेना को अँगरेज़ी सेना का बहुत सा सामान, जो इस ओर रह जायगा, हाथ आवेगा और यदि अँगरेज़ों की जीत हुई तो वह सदा खालसा सेना के अनुगृहीत बने रहेंगे। खालसा सेना और उसके अधिकारियों ने यह सम्मति स्वीकार कर ली और गुलाबसिंह उस सेना सहित अँगरेज़ों के साथ साथ जमरूद तक गए।

इधर लद्दाख़ का राजा विद्रोही हो गया और उसे दमन करने के लिए वज़ीर रतनू ने राजा गुलाबसिंह की ओर से अपनी सेना सहित उसपर आक्रमण कर दिया। लद्दाख़ के राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली और उसपर तीस हज़ार रुपए जुर्माना हुआ जिसमें से पीछे से पाँच हज़ार रुपए माफ कर दिए गए। उसी अवसर पर इस्कारदो के राजा अहमदशाह का पुत्र मुहम्मदशाह अपने पिता के विरुद्ध होकर खालसा सेना की शरण में आ गया था। जब लद्दाख़ के राजा को यह बात मालूम हुई तो उसने मुहम्मदशाह को कैद करके उसके पिता के पास भेज दिया। पिता ने अपने पुत्र मुहम्मदशाह को अनेक प्रकार के कष्ट देकर दंडित किया। जब राजा गुलाबसिंह को यह बात मालूम हुई तब उन्होंने अपनी सेना को इस्कारदो के राजा पर आक्रमण करने के लिए भेजा। गुलाबसिंह की सेना बढ़ती बढ़ती उस स्थान तक पहुँच गई जहाँ अँगरेज़ी और नैपाली राज्य की सीमा मिलती है। उस अवसर पर मि० कनिंघम,—जो आगे चलकर पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर जनरल हो गए थे—किसी सरकारी काम से वहाँ पहुँचे और गुलाबसिंह की सेना के सेनापति से मिले। उस समय पहाड़ों पर सरदी बहुत कड़ी पड़ती थी और रसद मिलने में भी बहुत कठिनता होती थी, इसलिए खालसा सेना को बहुत अधिक कष्ट उठाना पड़ा और अंत में विवश होकर वह लद्दाख़ लौट आई। यह बात सन् १८४१ की है। उस समय गुलाबसिंह पेशावर में थे और जनरल पोलाक की सेना को सकुशल खैबर घाटी से पार करने में सहायता दे रहे थे। दूसरे वर्ष सन् १८४२ में लद्दाख़ के राजा पर वज़ीर रतनू और दीवान हरीचंदने पुनः आक्रमण किया। इस बार लद्दाख़ के राजा ने संधि करके राजा गुलाबसिंह, चीन के सम्राट् और लासा के प्रधान लामा गुरु से सदा मित्रभाव रखने का संकल्प किया। इसके अतिरिक्त उसने आस पास के निवासियों को सदा शांत रखने और प्रतिवर्ष पुराने नियम के अनुसार शाल, ऊन और चाय आदि भेजने का भी वचन दिया। उस संधि में यह भी निश्चय हुआ था कि वह अपने राज्य में राजा गुलाबसिंह के विरोधियों और शत्रुओं को भी न रहने देगा और लद्दाख़ में आनेवाले व्यापारियों की सदा सब प्रकार से सहायता किया करेगा।

यद्यपि ध्यानसिंह की सहायता से महाराज शेरसिंह राज्यासन पर आरूढ़ हो चुके थे तथापि कई दुष्टों ने धीरे धीरे उन दोनों में द्वेष और विरोध उत्पन्न कर दिया। सरदार खुशहालसिंह के विचार भी महाराज की ओर से बदल गए और उन्हें संधानवालिए सरदारों पर भी यह संदेह हुआ कि वे लोग रानी चन्द्रकुँवर से मिल गए हैं। इसलिए सरदार अतरसिंह और अजीतसिंह सतलज पार करके अँगरेज़ी राज्य में चले आए; पर सरदार लहनासिंह वहाँ से भाग न सके और कैद कर लिए गए। यद्यपि महाराज ऊपर से सरदार ध्यानसिंह और राजा गुलाबसिंह से मित्रभाव रखते थे पर भीतर से उनके विचार बहुत बुरे हो गए थे, लोग कहते हैं कि वेण्टूरा साहब और सरदार लहनासिंह मजीठिया को महाराज साहब बहुत मानते थे और

महाराज के विचारों से अभिज्ञ होकर इन्हीं दोनों ने उन्हें यह सम्मति दी थी कि वे तीनों भाइयों को एक साथ ही गिरिफ़्तार करा लें। जब लद्दाख़ के झगड़े से छुट्टी पाकर गुलाबसिंह जम्बू पहुँचे तो महाराज शेरसिंह ने उन्हें बुलाने और आकर मिलने के लिए कई पत्र लिखे। गुलाबसिंह को यद्यपि महाराज के विचारों का कुछ परिचय अवश्य था, तो भी वे जाकर उनसे कांगड़ा—ज्वाला जी में मिले। यह भेंट बिलकुल मित्रभाव से हुई थी, इसलिए गुलाबसिंह महाराज के बहुतही समीप बैठे थे। राजा ध्यानसिंह को भी इस षड्यंत्र का पता लग चुका था इसलिए उन्होंने राजा सुचेतसिंह को लाहौर में ही रहने दिया, हीरासिंह को जसरौटा भेज दिया और वह स्वयं महाराज के साथ कांगड़ा गए। हत्या के लिए जो दिन निश्चित हुआ था, उस दिन संयोगवश वहाँ गुलाबसिंह उपस्थित नहीं थे और इसी लिए महाराज ने खाली ध्यानसिंह की हत्या करना उचित न समझा। इसके उपरांत शायद सरदार लहनासिंह मजीठिया ने महाराज को समझा दिया कि यदि ध्यानसिंह मरवा डाले जायँगे तो यहाँपर गुलाबसिंह और लाहौर में सुचेतसिंह बड़ा उपद्रव करेंगे और सम्भव है कि अपने भाई की हत्या का बदला लेने के लिए आपके राजकुमार प्रतापसिंह की आँखें भी निकलवा लें। अंत में यह निश्चय हुआ कि सब लोग मिलकर शिकार खेलने चलें और वहाँ कुछ निश्चित आदमी ध्यानसिंह और गुलाबसिंह को गोलियों से मार डालें। लेकिन जिन लोगों को इन दोनों की हत्या का भार दिया गया था उनके प्रति ध्यानसिंह ने कई अवसरों पर अनेक उपकार किए थे, इसलिए उन लोगों ने इस षड्यंत्र की सूचना ध्यानसिंह को दे दी। इसपर ध्यानसिंह किसी आवश्यक कार्य्य का बहाना करके रुक गए और महाराज के साथ शिकार में न जाकर अपने ही खेमे में रह गए। महाराज ने वहाँ भी उनके प्राण लेने का प्रबंध किया पर उसमें उन्हें सफलता न हुई क्योंकि ध्यानसिंह ने पहले से ही अपनी रक्षा के लिए खेमे के चारों ओर कड़ा पहरा बैठा दिया था। उसी अवसर पर सरदार ध्यानसिंह ने एक गीदड़ का पीछा करके उसे घायल किया था और उसकी घात में लगे रहने के बहाने से वह रात भर जागा करते थे। इसके थोड़े ही दिनों के बाद रणवीरसिंह का विवाह करने के लिए वे जम्बू चले गए। इन्हीं रणवीरसिंह को गुलाबसिंह ने आगे चलकर दत्तक लिया था।

रणवीरसिंह का विवाह विजयसिंह की छोटी कन्या से हुआ था। विवाह के अवसर पर महाराज शेरसिंह की ओर से राजा ध्यानसिंह भी उपस्थित थे। विवाह के उपरान्त गुलाबसिंह ने ध्यानसिंह से जम्बू में रहने के लिए बहुत आग्रह किया पर उन्होंने नहीं माना और वे लाहौर चले गए। लाहौर पहुँचने पर महाराज ने ऊपर से तो ध्यानसिंह के साथ बहुत अच्छा और मित्रतापूर्ण व्यवहार किया पर गुप्त रूप से उन्होंने अजीतसिंह को ध्यानसिंह की हत्या करने की आज्ञा दे रक्खी थी। अजीतसिंह ने यह समाचार हीरासिंह से कहा और ध्यानसिंह के बदले स्वयं महाराज को मार डालने की इच्छा प्रकट की, पर हीरासिंह ने उन्हें कुछ उत्तर न दिया। महाराज शेरसिंह को संधानवालिए सरदारों पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं था इसलिए उन्होंने लहनासिंह और अजीतसिंह को लाहौर के निकट शाहबिलावल नामक स्थान में सेना की कवायद देखने के लिए निमंत्रण दिया और उन लोगों ने भी यह निमंत्रण प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। उसी अवसर पर अजीतसिंह ने महाराज शेरसिंह को एक दोनली बन्दूक दिखाने के बहाने से उनपर गोली चला दी और महाराज वहीं गिर कर मर गए। लहनासिंह भी अपनी सेना सहित पास के एक बाग में ठहरे हुए थे। जब इधर महाराज के मरने के कारण सेना में हुल्लड़ हुआ और उन्हें यह समाचार मालूम हुआ तब उन्होंने उसी स्थान पर राजकुमार प्रतापसिंह का बध कर दिया (राजकुमार को वह अपने साथ सेना की क़वायद दिखाने के लिए

ले गए थे।) प्रतापसिंह को बध करके लहनासिंह किले की ओर बढ़े। उसी अवसर पर राजा ध्यानसिंह, जिन्हें इन सब दुर्घटनाओं का कुछ भी पता न था, एक गाड़ी पर सवार होकर टहलने के लिए जा रहे थे। रास्ते में उन्हें अजीतसिंह के साथ बड़ी भारी भीड़ जाती हुई दिखाई दी। अजीतसिंह ने उन्हें सब समाचार सुनाकर अपने साथ किले की ओर चलने के लिए कहा। उस समय ध्यानसिंह के साथ केवल तीन चार आदमी थे, इसलिए विवश होकर वे अजीतसिंह के साथ चल पड़े और थोड़ी दूर आगे चल कर वे भी मारे गए। उसी अवसर पर लहनासिंह ने वहाँ पहुँच कर ध्यानसिंह की हत्या करने के कारण अजीतसिंह को बहुत सी खोटी खरी बातें सुनाईं और लाश को शाल में लपेट कर हवेली में पहुँचा देने और युद्ध के वास्ते तैयार होने के लिए कहा।

इन सब उपद्रवों के कारण लाहौर की प्रजा बहुत भयभीत हो गई। राजा सुचेतसिंह ने जब महाराज की हत्या का समाचार सुना और जब उन्हें मालूम हुआ कि राजा ध्यानसिंह का घोड़ा अस्तबल में खाली आया है तब उन्होंने सूबेदार ईश्वरीसिंह को सब बातों का पता लगाने के लिए किले में भेजा। ईश्वरीसिंह ने लौट कर सब बातें सुचेतसिंह से कह सुनाईं। सुचेतसिंह ने सब समाचार तुरंत हीरासिंह को कहला भेजा और केसरीसिंह को भी एक पत्र भेजकर उनसे प्रार्थना की कि वह सारी सेना को महाराज शेरसिंह और राजा ध्यानसिंह की हत्या का समाचार सुना दें। राजा हीरासिंह और राय केसरीसिंह सेना सहित आधी रात के समय किले में पहुँचे। दोनों पक्षों में युद्ध हुआ और अजीतसिंह और लहनासिंह मारे गए। राजा ध्यानसिंह की स्त्री अपने पति के शव के साथ सती हो गई। सुचेतसिंह ने रानी से यह भी कहा था कि यदि आप कुछ विलंब करें तो मैं आपके पति की हत्या का बदला ले लूंगा। पर पंडित जल्ला ने विलंब होना उचित न समझा और ४७ वर्ष और २६ दिन की अवस्था में रानी सती हो गईं।

राजा सुचेतसिंह और हीरासिंह ने विद्रोहियों की अच्छी तरह खबर लेकर दलीपसिंह को राज्यासन पर आरूढ़ कराया। हीरासिंह प्रधान अमात्य बने। पर यह प्रबन्ध बहुत दिनों तक न चल सका और शीघ्र ही चाचा और भतीजे में परस्पर विरोध हो गया। विरोध का मुख्य कारण यह था कि राजा सुचेतसिंह ने सरकार से जसरौटा के इलाके का ठीका लिया था और इससे पहिले ही हीरासिंह को जसरौटा जागीर की भाँति मिल चुका था। जब तक राजा ध्यानसिंह जीवित रहे तब तक उन्होंने इन लोगों में विरोध न होने दिया, पर उनकी मृत्यु के उपरान्त दोनों में प्रकट रूप से बैर ठन गया। बात यह थी कि राजा हीरासिंह ने अधिकांश राजकार्य्य पण्डित जल्ला को सौंप रक्खे थे; और राजा सुचेतसिंह चाहते थे कि राजा केसरीसिंह की जागीर बढ़ा दी जाय। पर पण्डित जल्ला ने उनकी इच्छा पूर्ण करने में आनाकानी की। इसके अतिरिक्त पण्डित जल्ला ने राजा ध्यानसिंह की हत्या में अजीतसिंह को सहायता देनेवाले भाई गुरुमुखसिंह और बेलीराम मिश्र को पकड़ कर मरवा डाला था; इस कारण राजा सुचेतसिंह उनसे और भी अप्रसन्न हो गए थे। अब उन्होंने अवसर देख कर सरदार लहनासिंह के साथ का अपना सारा बैर भुला दिया और जाकर उनकी ओर सम्मिलित हो गए। इस कारण हीरासिंह का असंतोष और भी बढ़ गया।

जब ये समाचार गुलाबसिंह को मिले तब वे जम्बू से चल कर लाहौर पहुँचे। जब वे मार्ग में शाहदरा में ही ठहरे हुए थे, तभी राजा हीरासिंह, राजा सुचेतसिंह, तथा नगर के अन्य प्रतिष्ठित सरदार उनसे भेंट करने के लिए वहाँ पहुँचे। लाहौर पहुँच कर गुलाबसिंह ने हीरासिंह को दबाना और सुचेतसिंह को राज्याधिकार देना चाहा पर सब सरदारों ने एक मत हो कर यह बात अस्वीकार कर दी। लाहौर में रह कर

गुलाबसिंह ने वहांकी राजनैतिक अवस्था का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया और वे वह समझ गए कि शीघ्र ही यहाँ बड़ा भारी उत्पात मचेगा। इसलिये उन्होंने वहाँसे टल जाना ही अधिक उत्तम समझा। वे राजा सुचेतसिंह को अपने साथ लेकर जम्बू चले गये। गुलाबसिंह को न तो कोई सन्तान थी और न भविष्य में होने की सम्भावना ही थी, इसलिये इस बार जम्बू पहुँचने के कुछ ही दिन बाद उन्होंने रणवीरसिंह को दत्तक ले लिया। उधर राजा हीरासिंह ने बालक महाराज दलीपसिंह को दबा रक्खा और पण्डित जल्ला को अपना प्रधान मंत्री बना लिया। पण्डित जल्ला के अन्यायों के कारण बहुत से लोग उनसे असंतुष्ट हो गए थे, और इसी कारण उपद्रव की संभावना देखकर राज्य के दो उच्च कर्म्मचारी अपने पद से अलग हो गए। ये कर्म्मचारी फ़क़ीर अजीज-उद्दीन और सरदार लहनासिंह थे। फ़क़ीर अजीज-उद्दीन ने तो संसार से विरक्त हो जाने के कारण लोगों से मिलना जुलना छोड़ दिया था और सरदार लहनासिंह अपना पद छोड़ कर काशी आ रहे थे।

गुलाबसिंह जम्बू तो चले गए, पर अपनी सेना को दीवान हरीचन्द्र की अधीनता में शाहदरे में ही छोड़ गए। रणजीतसिंह के पुत्र पिशौरासिंह ने स्यालकोट के किले पर अपना अधिकार जमाकर कुछ उपद्रव करने का विचार किया था, इसलिए गुलाबसिंह ने आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लिया। उधर राजा सुचेतसिंह राज्याधिकार प्राप्त करने के विचार से खालसा सेना के अधिकारियों से पत्र व्यवहार कर रहे थे। लाहौर में बैठे बैठे दीवान जवाहिरसिंह इस कार्य्य में उनकी सहायता कर रहे थे। अंत में सब बातें निश्चित हो गईं और खालसा सेना के अधिकारियों ने गुप्त रूप से राजा सुचेतसिंह को राजधानी में आह्वान किया। तदनुसार राजा सुचेतसिंह अपने परम मित्र राय केसरीसिंह तथा अन्य सरदारों के साथ लाहौर जाने के लिए तैयार हो गए। गुलाबसिंह ने उनके इन विचारों का बहुत विरोध किया, उन्हें अनेक प्रकार से समझाया और अंत में अपनी पगड़ी उनके सामने रख कर उन्हें इस दुस्साहस से रोकना चाहा पर कुछ भी फल न हुआ। सुचेतसिंह एक घोड़े पर सवार होकर शिकार के बहाने जम्बू से निकले। उनके चले जाने की सूचना पाकर मियाँ रणवीरसिंह और दीवान हरीचन्द भी उनके पीछे गए। मार्ग में उन लोगों ने सुचेतसिंह को बहुत कुछ कह सुनकर लौट चलने की सम्मति दी, पर उसका भी कोई फल न हुआ। सुचेतसिंह तीन घण्टे में साँबा पहुँचे। वहाँ जाकर वह अपने रनवास से बिदा हुए, रनवास से बाहर निकलते ही उन्हें जवाहिरसिंह का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि सारी ख़ालसा सेना को अपनी ओर मिलाने में उन्हें पूरी सफलता हो गई है। यह पत्र पाकर वह इतने आपे से बाहर हो गए कि अपने तीन चार हज़ार आदमियों को वहीं छोड़ कर और केवल ४५ सवारों को अपने साथ लेकर लाहौर की ओर चल पड़े। इन ४५ सवारों में से कुछ तो हथियारबंद थे और कुछ खाली हाथ थे। जब वह लाहौर के समीप पहुँचे तब उन्हें मालूम हुआ कि खालसा सेना रुपये माँगती है। यदि उसे रुपये न दिये जायँगे तो वह उनपर आक्रमण करेगी, इसलिए उनको वहाँ से लौट जाना चाहिए। इस पर राजा सुचेतसिंह ने उत्तर दिया कि रणक्षेत्र से भागना वीरों का काम नहीं है। राय केसरीसिंह ने सम्मति दी कि यहाँसे लौट कर फ़ीरोज़पुर चलना और युद्ध के लिए तैयार होना अथवा लाहौर के शालामार बाग में अपनी पिछड़ी हुई सेना के आसरे ठहरना ही अधिक उत्तम होगा। पर सुचेतसिंह ने यह बात अस्वीकार की और डेरा मियाँ नामक स्थान पर ठहर गये। वहीं जवाहिरमल ने उनसे मिलकर अनेक विषयों पर बातें कीं। दूसरे ही दिन प्रातःकाल ख़ालसा सेना ने, जिसमें साठ हज़ार पैदल और बहुत से सवार थे, आकर तीन ओर से वह स्थान घेर लिया जहाँ राजा सुचेतसिंह ठहरे हुए थे। यह समाचार पाकर राजा सुचेतसिंह

उत्तम वस्त्र और आभूषण आदि पहन कर मृत्यु के लिये तैयार हो गये। उसी अवसर पर एक माली बहुत से बढ़िया फूल एक टोकरी में रखकर उनके सामने लाया, जिनमें से एक फूल उन्होंने स्वयं ले लिया, एक केसरीसिंह को दे दिया और एक दीवान भीमसिंह को दे दिया। थोड़ी ही देर बाद ख़ालसा सेना ने गोलियाँ बरसानी आरंभ कर दीं और जिस कमरे में राजा सुचेतसिंह अपने साथियों सहित बैठे थे उसकी छत टूट कर गिर पड़ी। उसी समय एक मनुष्य ने इनका घोड़ा लाकर सामने खड़ा कर दिया पर उन्होंने इस प्रकार भागने की अपेक्षा उसी स्थान पर युद्ध करके प्राण देना अधिक उत्तम समझा। केसरीसिंह को किसी मनुष्य ने तलवार से काट डाला दीवान भीमसेन भी एक गोली लगने के कारण गिर कर मर गये, निहालसिंह अपने प्राण लेकर भाग गये और राजा सुचेतसिंह युद्ध में बहुत से शत्रुओं को मार कर अंत में वीर-गति को प्राप्त हुए। पण्डित जल्ला सदा सुचेतसिंह से अनुचित व्यवहार करते रहे थे; और उनके मर जाने के उपरांत भी उन्होंने हीरासिंह को शोक मनाने तथा उस संबंध में और क्रियाएँ करने से रोका। यह भी कहा जाता है कि जब युद्ध प्रायः शांत हो चला और करनल इलाहीबख़्श ने आज्ञा माँगी तो हीरासिंह तो चुप हो रहे पर करनल दीवान अयोध्याप्रसाद, साधूसिंह तथा और लोगों के मना करते रहने पर भी पण्डित जल्ला ने बराबर बन्दूकें दागते रहने की आज्ञा दी थी।

जब गुलाबसिंह को इन सब बातों की सूचना मिली तब वे बहुत दुःखी हुए और राजा सुचेतसिंह की मृत्यु पर उन्होंने बहुत शोक प्रकट किया। मृत्यु के समय राजा सुचेतसिंह की अवस्था ४३ वर्ष की थी। पण्डित जल्ला ने हीरासिंह को सम्मति दी थी कि वह राजा सुचेतसिंह की जागीरें ज़ब्त कर लें। पर सुचेतसिंह की उत्तराधिकारिणी रानियाँ सती होने के समय अपनी सारी सम्पत्ति गुलाबसिंह को दे गई थीं। इसका कारण यह था कि राजा सुचेतसिंह सदा गुलाबसिंह को अपने पुत्र के समान मानते और उन्हींको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। गुलाबसिंह ने देखा कि आगे चल कर इस सम्पत्ति के संबंध में झगड़ा खड़ा होगा, इसलिए उन्होंने पहले से ही उसे तै करने के लिए लाहौर भेजा और दरबार से साँबा, सुचेतगढ़ आदि इलाके, जो स्वर्गीय राजा साहब ने ठीके पर लिये हुए थे, माँगे। उन भेजे हुए दो आदमियों में से एक पं० चरणदास भी थे जो पण्डित जल्ला के बड़े भाई थे। पण्डित चरणदास ने इस बात की बहुत चेष्टा की कि गुलाबसिंह के प्रस्ताव से पण्डित जल्ला सहमत हो जायँ, पर उसका कुछ भी फल न हुआ। राजा हीरासिंह सब प्रबंध पण्डित जल्ला को सौंप चुके थे, और इस संबंध में किसी की कुछ भी न सुनते थे। अन्यान्य सरदार भी पं० चरणदास के पक्ष में थे, पर पण्डित जल्ला के भय से वे लोग भी कुछ बोल न सकते थे। इसलिये चरणदास अपने साथी के साथ बिना किसी प्रकार की सफलता प्राप्त किए लौट आए। कुछ समय के उपरांत राजा हीरासिंह ने राजा दीनानाथ, भाई रामसिंह और इमाम-उद्दीन को यह झगड़ा तै करने के लिये गुलाबसिंह के पास भेजा। तीनों आदमी जाकर राजा गुलाबसिंह से मिले। बात चीत करते करते राजा दीनानाथ ने पिता शाहजहान और पुत्र औरंगज़ेब के परस्पर व्यवहारों का ज़िक्र किया और कहा कि राजा हीरासिंह आपके पिता के तुल्य हैं। इस पर राजा गुलाबसिंह ने उत्तर दिया कि उपस्थित विषय की शाहजहान की बातों से कोई समता नहीं है। और राजा सुचेतसिंह के मुक़ाबले में राजा हीरासिंह को सांसारिक व्यवहारों का कुछ भी अनुभव नहीं है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा कि यदि राजा हीरासिंह मुझपर आक्रमण करेंगे तो मैं अपने राज्य की रक्षा के लिये तलवार से उनका मुक़ाबला भी अवश्य करूँगा। इसपर हीरासिंह के तीनों दूत जम्बू से लाहौर लौट आए। गुलाबसिंह को गुजरात, जलालाबाद, पिंडदादनख़ाँ

आदि परगनों का ठीका मिला हुआ था और वह प्रांत उन्हींके अधिकारियों के अधीन थे। इन प्रांतों तथा उन स्थानों को, जो गुलाबसिंह की सम्पत्ति थे और पंजाब की सीमा के अन्दर थे, ज़ब्त करने और जम्बू प्रांत लूट लेने के अभिप्राय से राजा हीरासिंह ने बहुत सी पलटनें भेजीं जो एमनाबाद में जाकर ठहरीं। गुलाबसिंह ने भी बहुत से राजपूतों को एकत्र किया और घोषणा कर दी कि जो लोग चाहें प्रसन्नतापूर्वक सेना में भर्ती हो सकते हैं। इस प्रकार उनके सैनिकों की संख्या बहुत बढ़ गई; इसके अतिरिक्त लाहौर से भी बहुत से राजपूत आकर उनकी सेना में मिल गए। रणवीरसिंह और दीवान हरीचन्द इस सेना के सेनापति बनाए गए और सेना ने जम्बू नगर के निकट छावनी डाली। पर संयोगवश युद्ध होने की नौबत न आई। राजा जवाहिरसिंह ने परामर्श करके हीरासिंह को इस बात पर राजी कर लिया कि वह साँबा, सुचेतगढ़ और सुचेतसिंह की आधी सम्पत्ति स्वयं ले लें और शेष आधी सम्पत्ति गुलाबसिंह को दे दें। इसपर गुलाबसिंह ने रणधीरसिंह* नामक एक सुयोग्य युवक को लाहौर भेजा और उसी के द्वारा गुलाबसिंह और धीरसिंह में सन्धि हो गई।

अंत में पण्डित जल्ला को भी अपने अनुचित कृत्यों का फल मिलने का समय आ गया। रानी चन्दा बीबी के भाई सरदार जवाहिरसिंह पर पण्डित जल्ला ने पहरा रक्खा था। इसलिये बीबी चन्दाँ यह चाहती थीं कि यदि सम्भव हो तो पण्डित जल्ला का उपार्जित सारा वैभव खालसा सेना के अधिकारी और सैनिक लूट लें। इसलिये रानी, दलीपसिंह और जवाहिरसिंह तीनों मिलकर खालसा सेना के अधिकारियों के पास गए और उनसे पण्डित जल्ला के विनाश के प्रार्थी हुए। खालसा सेना के अधिकारियों ने उन लोगों की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और राजा हीरासिंह से कहा कि आप पण्डित जल्ला को हम लोगों के सपुर्द कर दें; पर हीरासिंह ने यह बात स्वीकार न की और बहुत से लोगों के मना करने पर भी अकेले एक घोड़े पर सवार होकर लाहौर से निकल जाना चाहा। हीरासिंह, रणधीरसिंह और पण्डित जल्ला थोड़े से आदमियों को साथ लेकर लाहौर से निकल भागे। खालसा सेना ने भी उनका पीछा किया और अंत में लड़ भिड़ कर उन तीनों और उनके साथियों को मार ही डाला। पण्डित जल्ला का कटा हुआ सिर लेकर खालसा सेना लाहौर लौटी। यह घटना सन् १८४४ के जाड़े की है। जब गुलाबसिंह को इस दुर्घटना का पता लगा और लाहौर से रणधीरसिंह का कटा हुआ सिर लेकर बघेलसिंह उनके पास पहुँचा तो वह बहुत दुःखी हुए। इससे पूर्व ही रणधीर की माता मियाँ उद्यमसिंह की मृत्यु के कारण बहुत दुःखी थीं, इसलिये उन्होंने रणधीर की मृत्यु का समाचार भी उनतक न पहुँचाया।

उस समय गुलाबसिंह को यह भी सूचना मिली कि मृत्यु से पूर्व हीरासिंह ने जसरौटा आदि प्रांतों को अपने अधीन करने के लिये श्यामसिंह और लालसिंह को भेजा था। उसी अवसर पर बीबी चन्दाँ और जवाहिरसिंह के भेजे हुये लाला रत्नचन्द्र और बाबा मियाँसिंह भी लाहौर से उनके पास पहुँचे। उन लोगों ने आकर उन्हें राजा हीरासिंह और पण्डित जल्ला के उन अन्यायों का स्मरण दिलाया जो स्वयं उन्हें और राजा सुचेतसिंह को सहने पड़े थे। रणधीरसिंह की हत्या के लिये भी उन लोगों ने हीरासिंह और जल्ला को ही दोषी ठहराया था। बीबी चन्दाँ चाहती थीं कि राजा हीरासिंह की सारी सम्पत्ति और उन्हें मिली हुई सुचेतसिंह की आधी सम्पत्ति मुझे मिल जाय और राजा रणजीतसिंह से मिली हुई जागीरें पहले की भाँति गुलाबसिंह स्वयं अपने पास रक्खें। गुलाबसिंह इस प्रस्ताव से सहमत न हुए और उन्होंने उस

* इस घटना का उल्लेख ज़फ़रनामा में भी है; पर उसमें लिखा है कि इस व्यक्ति का नाम सोहन था और वह गुलाबसिंह का पुत्र था।

सेना को रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लेना चाहा जिसे हीरासिंह ने चंबा पर अधिकार करने के लिये जसरौटा में ठहरा रक्खा था। रणधीरसिंह उस समय राजा सुचेतसिंह के स्थानापन्न होकर रामनगर में ठहरे हुए थे। गुलाबसिंह ने उन्हें तथा अन्य कई बड़े बड़े सरदारों को अपनी सेना सुसज्जित करने की आज्ञा दी। जब हीरासिंह की मृत्यु का समाचार फैला तब चोरी और उपद्रव होने लगे। खालसा सेना के कुछ सैनिकों ने गुलाबसिंह के राज्य में लूट मार आरंभ कर दी और जम्बू नगर घेर लिया; पर शीघ्र ही वे लोग वहांसे हटा दिए गए। उन्हें लौटाने के लिये गुलाबसिंह ने प्रत्येक सैनिक को पाँच पाँच रुपए दिए थे। इसके अतिरिक्त उनके सेनापति मेवासिंह को उन्होंने पचीस हज़ार रुपए नक़द और एक घोड़ा मै जीन के दिया था। जब यह सेना लाहौर के निकट पहुँची तब सरदार जवाहिरसिंह और बीबी साहिबा ने कई दूत भेजकर सेना के इस कार्य्य से तथा गुलाबसिंह को अपने साथ ले आने के कारण बहुत असंतोष प्रकट किया। शाहदरा पहुँचते पहुँचते खालसा सेना में परस्पर विरोध हो गया। उसका एक अंश तो गुलाबसिंह के साथ मिल गया और दूसरा अंश उनसे बिलकुल अलग हो गया। जब गुलाबसिंह ने हाथी पर सवार होकर नगर में प्रवेश करना चाहा तब उन्हें कई सरदारों का एक पत्र मिला जिसमें यह आज्ञा थी कि गुलाबसिंह कड़े पहरे में नगर में प्रवेश करें और अपने साथ किसी को न लावें। पर दीवान निहालचन्द ने सारी सेना के सामने उस पत्र का आशय छिपा कर अपनी ओर से पढ़ सुनाया—"बीबी साहबा और महाराज दलीपसिंह की आज्ञा है कि सारी सेना बड़ी प्रतिष्ठा से महाराज गुलाबसिंह को नगर में लावे।"

(शेष आगे।)

—:०:—

मुद्रण-कला

(लेखक—श्रीयुत सांवल जी नागर।)

यद्यपि वर्तमान प्रचलित छापे के अक्षरों का आविष्कार युरोप ही में हुआ है तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आरम्भ में यह विद्या चीन-देश-निवासियों को मालूम थी। अँग्रेज़ी भाषा के प्रसिद्ध विश्वकोष 'इन्साइक्लोपीडिया' के देखने से विदित होता है कि चीन देश में इस कला का प्रथम आविष्कार छठवीं शताब्दी में हुआ था। मिस्टर जुलियन के मतानुसार पहले पहल महीन लसदार मिट्टी की लेई समथल कर उसपर अक्षरों के आकार खोदे जाते थे और फिर वही मिट्टी का समथल तख्ता गरम करके सुखाया जाता था। इसके पश्चात् एक लोहे की चद्दर में लेई लगाकर, (जो राल, मोम और चूने की बनी होती थी) उसपर ये मिट्टी के अक्षर जमाए जाते थे और पुनः सुखाकर किसी प्रकार कार्य्य में लाए जाते थे। एक बार कार्य में लाए हुए अक्षर पुनः काम न दे सकते थे।*

पाठकों को यह देख बड़ा आश्चर्य होगा कि भारतवर्ष में भी आज से हज़ार वर्ष पूर्व छापने की विद्या का प्रचार नहीं तो ज्ञान तो अवश्य था।

* Such as had been the course of literature up to this time, so it continued until the close of the 6th century, when the art of printing, which became known in Europe nearly 900 years later, was invented in China....................It was during this last epoch that a further improvement was made in the art by the introduction of movable types, by a blacksmith named Pe Ching. This inventor, writes Mr. Julien, used to take a paste of fine and glutinous clay, and make it a regular plate, of the thickness of a piece of money, on which he engraved the characters. For each character he made a type, which he hardened at the fire. He then placed an iron plate on the table, and covered it with a cement composed of resin, wax and lime.